वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक १० अक्तूबर २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४
अंक १०

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

आश्विन, सम्वत् २०८३

अक्तूबर, २०२६

अनुक्रमणिका

* ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं, जैसे अग्नि और दाहिकाशक्ति : रामकृष्ण परमहंस देव ४३८
* आनन्दरूपिणी माँ दुर्गा का आगमन (स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) ४४१
* देवी पूजा (स्वामी रामानन्द) ४४४
* दुर्गोत्सव महास्नान की मृत्तिका : मिथक व शास्त्रीय गूढ़ार्थ (उत्कर्ष चौबे) ४४९
* (बच्चों का आंगन) आप मेरे आदर्श हैं (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) ४५४
* अदम्य-साहस-निर्भीकता की प्रतीक आदि शक्ति माँ दुर्गा (अलका सोनी) ४५६
* (युवा प्रांगण) विद्वत्ता के साथ सरल एवं विनम्र बनें (स्वामी गुणदानन्द) ४५७
* त्वं माया रूपिणी दुर्गा (प्रखर श्रीवास्तव) ४६०
* व्रज में श्रीमाँ सारदा (स्वामी ओजोमयानन्द) ४६३
* मातृशक्ति की उपासना का उत्सव चेतना-सम्पन्न जीवन से जोड़ता पर्व (डॉ. मोनिका शर्मा) ४६६
* बस्तर का दशहरा और रानी प्रफुल्ल कुमारी देवी (श्रीमती मिताली सिंह) ४६८
* वाराही तन्त्र में दुर्गापूजा का वर्णन (डॉ. अरूपम सान्याल) ४७३
* (भजन एवं कविता) माँ तू ममता की सागर है (कु. नर्मदा) ४४३ * महामाया तेरी माया कौन समझ पाया? (आनन्द कुमार तिवारी) * महिषासुरमर्दिनी-माहात्म्य (डॉ. अनिल कुमार) * माँ दुर्गा मैं तव गुण गाऊँ (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ४५९, * त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) ४६७, * मेरी माँ तू... (डॉ. निधि श्रीवास्तव) ४७१

श्रृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४३७
पुरखों की थाती ४३७
सम्पादकीय ४३९
रामगीता ४४७
श्रीरामकृष्ण-गीता ४६२
गीतातत्त्व-चिन्तन ४६९
साधुओं के पावन प्रसंग ४७६
समाचार और सूचनाएँ ४७९

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७०यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनीआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएं :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्यौहार

०४	स्वामी अभेदानन्द
१०	स्वामी अखण्डानन्द
१९	श्रीश्रीदुर्गा महाष्टमी
६, २२	एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दुर्गा माँ को दर्शाया गया है।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६३ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री रामराज प्रसाद और श्रीमती उषा प्रसाद की स्मृति में श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद, उ.प्र.	९,००१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७३६.	श्रीमती रंजना शर्मा, जहानाबाद, बिहार	ब्रिलियंट पब्लिक स्कूल, जहानाबाद (बिहार)

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ अक्तूबर २०२६ अंक १०

श्रीश्रीदुर्गा-स्तोत्रम्

अम्बा शूलधनुःकुशाङ्कुशधरी अर्द्धेन्दुबिम्बाधरी
वाराही मधुकैटभप्रशमनी वाणीरमासेविता ।
मल्लाद्यासुरमूकदैत्यदमनी माहेश्वरी अम्बिका
चिद्रूपी परदेवता भगवती श्रीराजराजेश्वरी ।।

– हे अम्बे ! आपने आयुध (शूल, धनुष एवं कुशांकुश) को धारण किया है, आपने अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण किया है, आप वाराही हैं, मधु तथा कैटभ नामक दैत्य का विनाश करने वाली हैं, आप सरस्वती तथा लक्ष्मी के द्वारा सेवित हैं। मल्ल तथा मूक दैत्य का दमन करने वाली हैं, आप माहेश्वरी तथा अम्बिका हैं, आप सदैव आनन्दमयी, चिद्रूपी सब देवता से भी परे सर्वोपरि हैं, आप भगवती और ईश्वर पर शासन करने वाली राजराजेश्वरी हैं।

पुरखों की थाती

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।९१४।।

– जो व्यक्ति आहार तथा विहार को संयमित रखता है, जो कर्मों में यथावश्यक चेष्टा करता है, जो सोने तथा जागने में संयमित है, उसका योग दुःखों का नाशक होता है।

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य
दोषे प्रयत्नः सुमहान्खलानाम् ।
निरीक्षतो केलिवनं प्रविश्य
क्रमेलकः कण्टक-जालमेव ।।९१५।।

– दुर्जन लोग शास्त्रों तथा महापुरुषों की सूक्तियों के रस को त्यागकर, अत्यन्त प्रयत्न के साथ लोगों के दोषों पर चर्चा करते हैं; वैसे ही जैसे कि कोई ऊँट केले के उद्यान में प्रविष्ट होकर भी काँटों से भरी झाड़ियों को ही ढूँढ़ता है।

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।।९१६।।

– मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि तथा गुरु – इन पर जिसकी जैसी भावना होती है, उसे उसी तरह का फल प्राप्त होता है। (पञ्चतन्त्र, विक्रम., ६४)

ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं, जैसे अग्नि और दाहिकाशक्ति : रामकृष्ण परमहंस देव

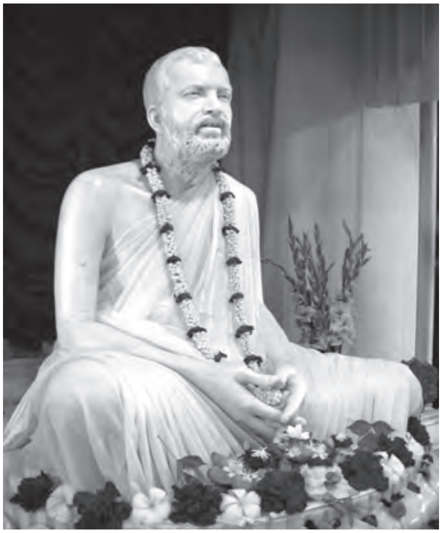

भगवान जब निष्क्रिय अवस्था में होते हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि कार्य नहीं करते, तब उन्हें मैं ब्रह्म या पुरुष कहता हूँ। और जब क्रियाशील रूप में सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि कार्यों के कर्ता के रूप में उनका विचार करता हूँ, तब उन्हें शक्ति, माया या प्रकृति कहता हूँ।

सांख्यदर्शन के अनुसार किस प्रकार पुरुष और प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति हुई, इस बात को समझाते हुए श्रीरामकृष्ण ने एक बार कहा था – ''पुरुष अकर्ता है, वह कुछ नहीं करता, प्रकृति ही सब कार्य करती है। पुरुष प्रकृति के सब कार्यों को साक्षी के रूप में देखा करता है। प्रकृति भी पुरुष को छोड़कर अकेली कोई कार्य नहीं कर सकती। घर में विवाह के समय देखा नहीं? घर का मालिक तो कामकाज का आदेश देकर स्वयं आराम से बैठकर हुक्का पीता है। परन्तु गृहिणी कपड़े में हल्दी के दाग लगाकर घर भर में एक बार इधर, एक बार उधर, दौड़ लगाती हुई देखती रहती है कि यह काम हुआ या नहीं, वह काम किया जा रहा है या नहीं, घर में जो आते हैं उनका स्वागत-सत्कार करती है और बीच-बीच में मालिक के पास आकर हाथ-मुँह हिलाते हुए खबर देती जाती है, 'यह ऐसा हुआ, वह वैसा हुआ' यह करना होगा, वह नहीं किया जाएगा आदि। मालिक तमाखू पीते-पीते सब कुछ सुनता जाता है और सिर हिलाते हुए 'हूँ, हूँ' करके अपनी सम्मति देता जाता है। प्रकृति-पुरुष का काम भी ऐसा ही होता है।''

वस्तुतः ब्रह्म और शक्ति अभिन्न है। जो सच्चिदानन्द हैं वे ही सच्चिदानन्दमयी हैं। जैसे मणि और उसकी प्रभा। 'मणि' कहते ही उसकी प्रभा का बोध होता है और 'मणि' की प्रभा' कहते ही मणि का बोध होता है। मणि को सोचे बिना उसकी प्रभा को नहीं सोचा जा सकता है और मणि की प्रभा को सोचे बिना मणि को नहीं।

ब्रह्म और शक्ति अभिन्न है। एक को मानने से दूसरे को भी मानना पड़ता है। जैसे अग्नि और दाहिकाशक्ति – दाहिका-शक्ति के सिवा अग्नि को सोचा नहीं जा सकता, फिर अग्नि को छोड़कर उसकी दाहिकाशक्ति को नहीं सोचा जा सकता। वैसे ही, सूर्य को छोड़ सूर्य की किरणों को सोचा नहीं जा सकता और सूर्य-किरणों को छोड़ सूर्य को नहीं सोचा जा सकता। दूध को छोड़ कर धवलत्व का विचार नहीं किया जा सकता, फिर दूध के धवलत्व के बिना दूध का विचार नहीं हो सकता। इसी प्रकार, ब्रह्म को छोड़ शक्ति को और शक्ति को छोड़ ब्रह्म को नहीं सोचा जा सकता।

जहाँ कहीं कार्य है – सृष्टि, स्थिति, प्रलय है – वहीं शक्ति है ! परन्तु जल स्थिर रहने पर भी जल है और तरंगपूर्ण होने पर भी जल ही है। वह सच्चिदानन्द ही आद्याशक्ति है, जो सृष्टि, स्थिति, प्रलय किया करती है। जैसे कप्तान जब कोई काम नहीं करता, तब भी वही है, और जब पूजा करता या लाट साहब से मिलने जाता है तब भी वह वही एक ही है। भेद केवल उपाधि में है।

जैसे, मैं कभी वस्त्र पहने रहता हूँ, तो कभी वस्त्रहीन, वैसे ही ब्रह्म भी कभी सगुण है, तो कभी निर्गुण। ब्रह्म जब शक्ति के साथ संयुक्त होता है, तब उसे सगुण ब्रह्म कहते हैं, वही ईश्वर है।

यह जान रखो कि मेरी जगज्जननी माँ एक है और अनेक भी, फिर वह एक और अनेक के परे भी है।

मेरी ब्रह्ममयी माँ ही सब कुछ बनी है। वह आद्याशक्ति ही जीव-जगत् बनी है। वही अनन्त शक्ति-स्वरूपिणी जगत् में दैहिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि विविध शक्तियों के रूप में प्रकाशित है। मेरी माँ ही वेदान्त का ब्रह्म है। वह ब्रह्म का व्यक्त रूप है।

सम्पादकीय

हे चेतनारूपिणी माँ दुर्गे ! मुझको चेतन कर दो !

भारतीय संस्कृति में आने वाले सभी त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों या स्वयं की जाने वाली सभी साधनाओं का उद्देश्य है – मानव में अन्तर्निहित दिव्य चेतना को अभिव्यक्त करना, उसके चैतन्य स्वरूप को प्रकट करना। श्रीमद्भागवत-माहात्म्य में महर्षि व्यास जी प्रथम श्लोक में ही भगवान श्रीकृष्ण की वन्दना करते हुए कहते हैं –

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।

तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः ।।

इसमें उन्होंने श्रीकृष्ण को सच्चिदानन्द शब्द से विभूषित किया है। ईश्वर को सच्चिदानन्द के नाम से सम्बोधित किया जाता है। सच्चिदानन्द की शाब्दिक व्याख्या है – सत् + चित् + आनन्द। इसमें चित् का अर्थ चैतन्य है। चूँकि मानव के हृदयकमल में उसी सच्चिदानन्द का वास है, इसलिए वह भी चैतन्यमय है। चैतन्य के रहने के कारण ही वह सचेतन रहता है। उसमें चेतना का संचार होता है। यदि किसी प्राणी में चेतना लुप्त हो जाए, तो उसके सारे अवयव रहते हुए भी वह जड़ हो जाता है। इसलिए सभी आचार्य उस अखण्ड शाश्वत चेतना के बोध हेतु प्राणियों को प्रेरित करते हैं और विभिन्न धार्मिक और आध्यात्मिक क्रिया-कलापों के द्वारा उस चेतना को सर्वाधिक उद्दीप्त करने का प्रयास करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य में विद्यमान चैतन्य स्वरूप परमात्मा क्या सो गया है कि उसे जगाना है? क्या सदा देदीप्यमान चैतन्य अचेत हो गया है कि उसे पुनः सचेत करना है? क्या वह लुप्त हो गया है कि उसे पुनः अभिव्यक्त करना है? क्या वह नष्टप्राय हो गया है कि उसे पुनः प्रकट करना है?

इस प्रश्न का उत्तर हमें गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस में मिलता है। कागभुशुण्डिजी गरुड़जी को जीव की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि –

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।

चेतन अमल सहज सुख रासी ।। ७/६/१०२

– जीव ईश्वर का अंश है। इसलिए वह अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि है।

यह सुखराशि चेतन जीव अचेत कैसे होने लगा? सुखराशि जीव दुखराशि में कैसे रहने लगा? निर्मल प्राणी कल्मषयुक्त कैसे हो गया? ये सभी मिलकर जीव के शुद्ध चैतन्यस्वरूप को आवृत कैसे करने लगे, जिससे जीव कातर होकर माँ से प्रार्थना कर रहा है कि माँ मुझे चेतन कर दो?

इसका भी उत्तर गोस्वामी जी अगले दोहे में देते हैं –

सो माया बस भयउ गोसाईं।

बँध्यो कीर मरकट की नाईं ।।

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई।

जदपि मृषा छूटत कठिनई ।।

तब ते जीव भयउ संसारी।

छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी ।। ७/११६/३-५

कागभुशुण्डि जी गरुड़ जी को कहते हैं – हे गोसाईं! वह सुखराशि चेतन जीव माया के वशीभूत होकर तोते और वानर की भाँति अपने आप ही बँध गया। इस प्रकार जड़ और चेतन में ग्रन्थि पड़ गई। यद्यपि यह ग्रन्थि मिथ्या है, तथापि इसका छूटना कठिन है। तभी से जीव संसारी हो गया, जन्म-मरणशील हो गया। अब तो न वह ग्रन्थि छूटती है और न वह सुखी होता है।

इस ग्रन्थि से मुक्त होने का उपाय क्या है? कागभुशुण्डि जी ने कहा कि इस ग्रन्थि से मुक्त होना बहुत सरल नहीं है। इस ग्रन्थि के उन्मोचन में अनेक कठिनाइयाँ हैं –

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई ।।
जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी।
ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी ।।
अस संजोग ईस जब करई।
तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ।। ७/११६/६-८

– वेदों और पुराणों ने बहुत से उपाय बताए हैं, पर वह ग्रन्थि छूटती ही नहीं, वरं अधिकाधिक उलझती ही जाती है। जीव के हृदय में अज्ञान रूपी अन्धकार विशेष रूप से छा रहा है, इससे ग्रन्थि दिखती ही नहीं है, तो छूटे कैसे? जब कभी ईश्वर ऐसा संयोग उपस्थित कर देते हैं, तब भी कदाचित् ही वह ग्रन्थि छूटती है।

इतनी जीव की विवशता है ! इतना माया का प्रभाव है कि वह जीव को अत्यन्त मोहग्रस्त कर उसे दुख-भोग करने को विवश कर देती है। इसीलिए युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण प्रार्थना कर रहे हैं – 'हे राम ! मैं भजनहीन हूँ, साधनहीन हूँ, ज्ञान-भक्ति-क्रिया-हीन हूँ ! राम ! शरणागत हूँ! मैं देह-सुख नहीं चाहता। अष्टसिद्धि तो क्या, शत सिद्धियाँ भी नहीं चाहता। मैं शरणागत हूँ, शरणागत। बस वही करो, जिससे तुम्हारे पाद-पद्मों में शुद्धा भक्ति हो और तुम्हारी भुवनमोहिनी माया से मुग्ध न होऊँ। राम ! मैं शरणागत हूँ।'' (श्रीरामकृष्णवचनामृत, अखण्ड, पृ. ६५५)

इस भुवनमोहिनी माया ने जीव के मूल स्वरूप चैतन्य को आवृत कर उसे अचेतन-सा कर दिया है। इसीलिए वह स्वयं जड़भावापन्न होकर सर्वत्र चैतन्य ईश्वर को न देखकर सबको जड़वत् देखता है। जबकि यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वरमय है, चैतन्यमय है।

जब महामाया जीव पर कृपा कर अपनी माया के आवरण को उस पर से हटा लेती हैं, तब उसकी चेतना जग जाती है, उसका चैतन्य अभिव्यक्त होने लगता है और वह सर्वत्र सबमें उस दिव्य चेतना को, उस परमात्मा को देखने लगता है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – यथार्थ ज्ञान से सभी चीजें चेतन दिखाई पड़ने लगती हैं। (श्रीरामकृष्णवचनामृत, ६५७)

इसलिए जीवों पर असीम कृपा करके ही भगवान श्रीरामकृष्ण ने काशीपुर उद्यानवाटी में कल्पतरु दिवस के दिन समागत भक्तों को अन्य सांसारिक वस्तुओं का वरदान न देकर चैतन्य होने का अभय वरदान दिया था।

अत: मानव में सर्वप्रथम उस चैतन्य सत्ता का पूर्ण स्फुरण आवश्यक है। दुर्गासप्तशती में देवता माँ से प्रार्थना करते हैं –

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।।

– जो देवी सभी प्राणियों में चेतना के रूप में विराजमान है, उन्हें नमस्कार है, उन्हें बारम्बार नमस्कार है।

इसलिए हे माँ ! मेरी तुमसे प्रार्थना है कि माया के कठिन मोहपाश से अपने पुरुषार्थ से मुक्त होना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। अत: तुम सभी प्राणियों पर कृपा कर उनकी चेतना को जाग्रत कर दो, उनकी चैतन्यसत्ता पर पड़े आवरण को नष्ट कर उन्हें प्रोज्ज्वल स्वमहिमा में प्रतिष्ठित कर दो।

माँ ! जीव का यह दुर्भाग्य रहा कि वह कठिन व्रत, उपवास, अनुष्ठान करके तुझसे धन-सम्पत्ति, पद-प्रतिष्ठा, सुख-वैभव की ही याचना करता रहा और उसे पाकर कभी वह सन्तुष्ट रहा, तो कभी भयभीत और दुखी रहा। उसने कभी भी तुझसे चैतन्यप्राप्ति का वरदान नहीं माँगा। लेकिन अब यह समझ में आया कि यदि चैतन्य जाग्रत नहीं हुआ, तो संसार के सभी वैभव व्यर्थ हैं। इसलिए माँ मेरी चेतना को जागृत कर दो। मेरे हृदयस्थ चैतन्यशक्ति पर जो माया का आवरण पड़ा है, उसे नष्ट कर मेरी चैतन्यसत्ता को समुज्ज्वल प्रकाशित कर दो।

माँ ! हमारे ऊपर इतनी कृपा करो, जिससे मैं कभी भी यह न भूलूँ कि तुम परमब्रह्मस्वरूपिणी चिन्मयी, चैतन्यमयी करुणामयी मेरी माँ हो और प्रति पल हमारी सब प्रकार से रक्षा करती हुई, हम सबका मंगल-विधान कर रही हो। अत: हे चेतनारूपिणी माँ ! मुझे चेतन कर दो ! ○○○

दुर्गा-पूजा विशेष

आनन्दरूपिणी माँ दुर्गा का आगमन

स्वामी त्रिगुणातीतानन्द

अनुवादक- उत्कर्ष चौबे, वाराणसी

माँ फिर हमें देखने आ रही हैं। अपने प्रिय बच्चों के पास स्नेह से दौड़ी चली आ रही हैं, ऐसा सोचते ही हृदय आनन्द से भर जाता है। माँ कितनी दयामयी हैं ! कितनी स्नेहमयी हैं ! हर वर्ष हमें देखे बिना वे रह ही नहीं पातीं। क्या कोई माँ अपने बच्चे को अधिक दिन देखे बिना रह सकती है? इसीलिए माँ की आँखें स्नेह के आँसुओं से भरी रहती हैं। यदि वे इतनी स्नेहमयी न होतीं, तो क्या इन शुष्क, अनगढ़ सन्तानों के भीतर स्नेह जगा पातीं? माँ से ही निरन्तर स्नेह की धारा पाकर हम दूसरों को भी थोड़ा-बहुत स्नेह की दृष्टि से देखना सीख पाए हैं।

हम तो माँ को आसानी से भूल सकते हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं, पर माँ अपने बच्चे को कभी नहीं भूलती। माँ स्वयं जानती हैं – बच्चा क्या होता है। बच्चा नहीं जानता कि 'माँ क्या है, माँ के कितने गुण हैं, माँ की कितनी महिमा है। यदि हम जानते, तो क्या हमारी आज यह दशा होती? माँ ने स्वयं बच्चे को गर्भ में धारण किया, जन्म दिया, इसलिए माँ बच्चे को भली-भाँति जानती हैं। न रह पाकर माँ बार-बार अपने बच्चे को देखने आती हैं। आकर प्रेम से, भक्ति-विश्वास से, उदारता से हमें भीतर-ही-भीतर कितनी अद्भुत बातें सिखा जाती हैं। अहा ! माँ के उस प्रेम और उस सामर्थ्य का यदि एक कण भी हमें मिल जाए, तो 'माँ का पुत्र' कहकर अपने को पहचान देने की हमारी अभिलाषा एक दिन के लिये भी पूर्ण हो जाए।

क्या हमने अपनी माँ को ध्यान से देखा है? उनकी आँखें कितने स्नेह से भरी हैं, आँसुओं से छलछला रही हैं। वे कितनी आनन्दमयी हैं ! उनके पास खड़े होते ही शरीर, मन और हृदय; सब किसी अद्भुत आनन्द से भर उठते हैं। माँ के आने पर सैकड़ों लोग कितनी प्रसन्नता का अनुभव करते हैं; उन्हें देखने के लिए लोग सब काम छोड़कर दूर-दूर से चले आते हैं। माँ की पूजा करने के लिए लोग तरह-तरह की सामग्री दूर देशों से लाते हैं। आज माँ घर आएँगी, इसलिए कितनी सफाई, कितने नए वस्त्र, कितना परस्पर प्रेम-भरा व्यवहार, कितने प्रकार की हर्ष-उल्लास की लहरें उठती हैं। कितने लोग घर की, वस्त्र की, शरीर की और मन का मैल दूर करते हैं। माँ के आगमन से धनी-गरीब सभी समान रूप से आनन्दित हो उठते हैं। माँ का स्नेह धनी पर भी वैसा ही है, गरीब पर भी वैसा ही। वे धनी की बात जैसे सुनती हैं, वैसे ही गरीब की भी सुनती हैं। गरीब धीरे से माँ के कान में कहता है, 'माँ, फिर मेरे घर आना।' मेरे इस गरीब बच्चे का मेरे सिवा और कोई नहीं, इसलिए वर्ष पूरा होते-न-होते माँ फिर स्नेह से उसके घर आ जाती हैं। गरीब को भोजन भी नहीं मिलता, फिर भी माँ की कृपा से वह अपने मन की पूजा को सुन्दर ढंग से सम्पन्न कर पाता है।

माँ के कुछ उन्नत पुत्र कहते हैं, "हमारी माँ इतनी छोटी नहीं है। हमारी माँ सर्वव्यापी हैं। उनका आगमन, आवाहन और विसर्जन क्या? क्या उन्हें चावल-केला से पूजा जा सकता है?"

पर हमारा मन इसमें नहीं लगता। हमारी माँ सब प्रकार की हो सकती हैं। 'वे साकार भी हैं, निराकार भी हैं, और इसके अतिरिक्त क्या हो सकती हैं, यह कौन जानता है?' वे अनन्त हैं, उनके गुण अनन्त हैं, उनकी महिमा अनन्त है, उनके रूप भी अनन्त हैं। वे भक्तवत्सला हैं, उनकी करुणा अपरम्पार है। जो बालक जिस रूप में उन्हें पाकर आनन्दित होता है, वे उसी रूप में उसके सामने प्रकट होती हैं। यदि वे कृपा करके हमारी क्षमता के अनुसार प्रकट न हों, तो

क्या हम उस अनन्त स्वरूप को समझ सकते हैं?

जब हम बड़े होंगे, जब हमारी बुद्धि परिष्कृत होगी, हृदय दर्पण की तरह निर्मल होगा, तब यदि माँ हमारे सामने अपने अत्यन्त गूढ़ और उच्च भाव प्रकट करें, तो हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। अभी हम छोटे बच्चे हैं, अभी जितना हम माँ को अपनी आँखों से देखेंगे, उतना ही उनके रूप और गुण हमारे हृदय में अंकित होते जाएँगे। बचपन में जो देखा-सुना जाता है, वह आसानी से हृदय में बस जाता है। इस समय अनन्त, असीम जैसे ऊँचे विचारों को समझना बहुत कठिन, बल्कि असम्भव-सा है। दूसरी ओर, सांसारिक और क्षणभंगुर विषयों के संस्कार मन में गहराई से बैठते जाते हैं। बड़े होकर देखते हैं कि मन में कितने दोष भर गए हैं, जिन्हें साफ करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

जब आँखें बन्द करके थोड़ी देर ध्यान करने बैठते हैं, तो केवल अन्धकार ही दिखाई देता है। बड़े तो हो गए, पर विश्वास और भक्ति में बालक जैसे भी नहीं रहे, बल्कि उस निर्मल बुद्धि वाले बालक से भी अधम हो गए। फिर जब बालक की तरह माँ कहकर कुछ मूर्त रूप को देखने और छूने लगे, तब धीरे-धीरे कुछ उन्नति का अनुभव हुआ। क्रमश: समझ में आया कि माँ की मूर्ति-पूजा कमजोर मन को कितना सहारा देती है और थोड़े में ही कितना फल देती है।

हमारी माँ केवल मिट्टी की या खेलघर की माँ नहीं हैं। पहले सुना था, अब विश्वास भी हो गया है – हमारी माँ सुनती हैं, मनोकामनाएँ पूर्ण करती हैं। हमारी माँ सर्वमंगला, अन्तर्यामिनी, सर्वशक्तिमती, सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। एक साधक ने गाया है – 'अगर मेरी माँ काली होती, तो क्या मैं उसे इतना पुकारता? यदि वह काली है, तो फिर क्यों वह हृदय-कमल को प्रकाशित करती है?'

मैं अपनी माँ को पुकारता हूँ, उनकी पूजा करता हूँ, तो मेरा हृदय भर जाता है। इसे कैसे अस्वीकार करूँ? माँ से जो कुछ मैं हृदय से कहता हूँ, वह सिद्ध हो जाता है, इसे कैसे न मानूँ? 'जान रे मन, परम कारण श्यामा केवल साधारण नारी नहीं हैं।' क्या मेरी माँ कोई ऐसी-वैसी है कि मैं किसी को भी माँ कह दूँ?

देव्युपनिषद् में कहा गया है – **'सर्वै वै देवा देवीम् उपतस्थुः कासि त्वं महादेवि। साऽब्रवीत् अहं ब्रह्म-स्वरूपिणी मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत् शून्यञ्चा-शून्यञ्च अहम् आनन्दानानन्दौ अहं विज्ञानाविज्ञाने अहं ब्रह्माब्रह्मणी...।'**

अर्थात् देवताओं ने देवी से पूछा – हे महादेवी ! आप कौन हैं?' देवी ने कहा – 'मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूँ; मुझसे ही प्रकृति-पुरुषात्मक यह जगत् उत्पन्न हुआ है। मैं शून्य और अशून्य, आनन्द और निरानन्द, ज्ञान और अज्ञान, ब्रह्म और अब्रह्म सब कुछ हूँ।'

वैदिक देवीसूक्त में देवी कहती हैं – मैं ही जगदीश्वरी हूँ, मैं ही सबको धन देती हूँ, सबकी मनोकामनाएं पूर्ण करती हूँ। यज्ञ के योग्य देवताओं में मैं ही श्रेष्ठ हूँ। मैं सभी स्थानों में निवास करती हूँ। सबके शरीर में स्थित हूँ। देवता जहाँ, जो भी करते हैं, मेरी ही उपासना करते हैं। मेरे ही द्वारा सब लोग भोजन करते हैं, देखते-सुनते हैं, प्राण धारण करते हैं। जो मुझे नहीं मानता, वह नष्ट हो जाता है। मैं ही कारणों की कारण हूँ, परमात्मा से प्रकट होकर समस्त जगत् में चेतना और माया के रूप में व्याप्त हूँ।

वक्तृचोपनिषद् में कहा गया है – **'तस्या एव ब्रह्मा अजीजनत् विष्णुरजीजनत् रुद्रो अजीजनत् सर्वमजीजनत् सर्वं शाक्तमजीजनत्।'** अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सब उसी शक्ति से उत्पन्न हुए हैं।

यह शक्ति निराकार और सर्वव्यापी होते हुए भी भक्तों के कल्याण के लिए साकार रूप धारण करती है। जैसा कि सामवेद के केनोपनिषद् में कहा गया है – **'स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानाम् उमां हैमवतीम्।'**अर्थात् वही ब्रह्म आकाश में अत्यन्त शोभायमान स्त्रीरूप धारण कर 'उमा हैमवती' के रूप में प्रकट हुआ।

ऋषि मेधस् राजा सुरथ से कहते हैं –

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा क्रियते मम ।।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।।

अर्थात् वह जगन्मूर्ति, सर्वव्यापी, महामाया नित्य और जन्मरहित होते हुए भी, भक्तों की कार्यसिद्धि के लिए समय-समय पर प्रकट होती है, तब उसे 'उत्पन्न' या 'अवतार' कहा जाता है।

एक बच्चा अपनी जननी को 'माँ' कहकर पुकारता है;

क्या वह जानता है कि 'माँ' क्या है? वह केवल पुकारता है, माँ के पास जाकर उसकी गोद में चढ़ता है और शान्ति पाता है। धीरे-धीरे बड़ा होकर समझता है कि 'माँ' क्या है। उसी प्रकार हम भी पहले 'दशभुजा आनन्दमयी माँ' कहकर पुकारते थे, पर समझते नहीं थे। फिर थोड़ा बड़े होकर जाना, वहीं माँ दुर्गा हैं, वही भगवती ईश्वरी हैं; उन्हें नमस्कार और पूजा करनी चाहिए। जब और अधिक बड़े हुए, तो समझ में आया – वही माँ हमारे दुख दूर करती हैं, संकट से बचाती हैं, सच्चे हृदय से पुकारने पर सुनती हैं। थोड़ा ज्ञान होने पर हम अनुभव करते हैं –

कब किस भाव में रहती हो, हे माँ श्यामा सुधातरंगिणी ।
साधकों की इच्छा पूर्ण करती हो, नाना रूपधारिणी ।
कभी कमल पर नृत्य करती हो, हे पूर्णब्रह्म सनातनी।

जब और बड़े होंगे, तब शायद यह भी अनुभव होगा कि –

जिसकी जितनी साधना, वह उतना ही परब्रह्म को कहता है;
सब कुछ तुम ही हो, हे त्रिलोकव्यापिनी माँ !

इसके आगे तुरीय, अवर्णनीय अवस्था है। हमारी माँ दूसरों की दृष्टि में मिट्टी की मूर्ति हो सकती हैं। पर भक्त की दृष्टि में वह 'सच्चिदानन्दमयी, चिद्घनमूर्ति हैं। माँ सर्वव्यापी हैं – आकाश में, मनुष्य में, वृक्ष में, ईंट-पत्थर में, यहाँ तक कि एक कण में भी। फिर क्या मेरी माँ मेरे हाथों से बनी इस प्रिय प्रतिमा में नहीं रहेंगी? यह कभी नहीं हो सकता।

यदि मेरे भीतर भक्ति और विश्वास हो, यदि मैं हृदय से माँ को पुकारूँ, प्राण से रोकर कहूँ, यदि उन्हें न देखकर व्याकुल हो जाऊँ, तो निश्चय ही माँ आएँगी, इसी मिट्टी की प्रतिमा में प्रकट होंगी। जहाँ पुकारूँगा, वहीं आएँगी। मेरे छोटे मन के लिए उन्हें जिस रूप में समझना सम्भव होगा, उसी रूप में वे मेरे पास आएँगी।

माँ सत्य हैं, नित्य हैं, वे अन्तर्यामिनी हैं, भक्तवत्सला हैं, स्नेहमयी जननी हैं। यदि पुत्र सच्चे प्राण से पुकारे, तो माँ अवश्य आती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। वे सर्वशक्तिमती हैं और मेरी छोटी पात्रता के अनुसार ही मेरे सामने प्रकट होती हैं।

आओ माँ, आओ माँ, हे हृदय-रमणी, प्राण-प्यारी,
हृदय-आसन पर एक बार विराजो, मैं तुम्हें निहारूँ !
जन्म से ही तुम्हारे मुख को देखने की चाह में
मैंने यह जीवन कितने कष्ट सहकर बिताया है,
– माँ तुम जानती हो ।
एक बार मेरे हृदय-कमल को खिलाकर
उसमें प्रकट हो जाओ, हे आनन्दमयी माँ !'

OOO

कविता

माँ तू ममता की सागर है

कु. नर्मदा

प.रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर

माँ तू ममता की सागर है, तू प्रेम का अंबार है ।
निश्छल अविरल बहती तुझमें, प्रेमसुधा रसधार है ।।
माँ तू ममता की सागर है, तू प्रेम का अंबार है ।

तेरी ममता के आगे, कुबेर का धन बेकार है ।।
माँ तू ममता की सागर है, तू प्रेम का अंबार है ।

तू गागर में सागर भरने, वाली देवी का अवतार है ।।
माँ तू ममता का सागर है, तू प्रेम का अंबार है ।

तेरी ममता से जड़ भी चेतन हो जाते,
तू नित नवीन करती चमत्कार है ।।
जग में सब प्राणी बसते, तू सब जीवों की संसार है ।
माँ तू ममता की सागर है, तू प्रेम का अंबार है ।

शब्द कम पड़ जाते हैं तेरे लिए,
तू एक शब्द में ही केवल, विश्व प्रेम व्यापार है ।।
हर शब्द में तू है, तुझमें ही शब्द कोष भण्डार है ।
माँ तू ममता की सागर है, तू प्रेम का अंबार है ।।

दुर्गा-पूजा विशेष

देवी पूजा

स्वामी रामानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(पूज्यपाद महाराज जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठतम साधुओं में से एक हैं। राहड़ा, सेवाप्रतिष्ठान, सारदापीठ आदि प्रमुख केन्द्रों के सचिव के रूप में महाराज जी ने श्रमसाध्य कार्य कर इन केन्द्रों को नई दिशा दी। विगत दो दशकों से आप काशी सेवाश्रम में साधन-भजन में लीन हैं।)

शरदकाल में जो दशभुजा देवी की पूजा विशेष रूप से प्रचलित है, उसी देवी की पूजा के विषय में इस निबन्ध में संक्षेप में चर्चा की जा रही है। इस पूजा का ऐतिहासिक मूल्य कितना है, इस विषय में यहाँ चर्चा नहीं की जा रही

है, केवल इस पूजा के नैतिक और आध्यात्मिक प्रभाव के विषय में ही विचार किया जाएगा। देवी और श्रीदुर्गा समानार्थक शब्द हैं।

कल्पनाशील मानव-मन किसी भी पदार्थ या उसके गुणों को कल्पना की दृष्टि से देखने का अभ्यस्त है। जब तक मनुष्य का मन द्वैत-बुद्धि से मुक्त नहीं होता, तब तक वह स्थूल या सूक्ष्म; किसी न किसी वस्तु या भाव को आधार बनाकर ही साधना-पथ में अग्रसर होता है। साधना की परिपक्व अवस्था में साधक साधना और साध्य को अभिन्न अनुभव कर एकत्व प्राप्त करता है, धर्म का इतिहास इसी का प्रमाण है। अत: गुण-दोष में थोड़े-बहुत भेद होने पर भी अधिकांश साधक किसी प्रतीक या मूर्ति का आश्रय लेकर ही साधना में प्रवृत्त होते हैं। प्रारब्धवश कुछ जीवन्मुक्त पुरुष ब्रह्म-साक्षात्कार के पश्चात् भी जगत्-कल्याण के लिए द्वैत-भूमि में अवतरित होकर भक्तों के लिए समय-समय पर द्वैत-भाव का आश्रय लेते हैं।

जन्म-जन्मान्तर के भ्रम या मिथ्या-बुद्धि के कारण जीव यह भूल जाता है कि वह ब्रह्म से अभिन्न है। वह स्वयं स्वरूपत: ब्रह्म है, '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः**' – इस सत्य को जीव पूर्णत: भूल जाता है। किन्तु इस सत्य का पूर्ण अनुभव हुए बिना किसी की वास्तविक मुक्ति नहीं होती। जैसे कण्ठ में हार होने पर भी भ्रमवश कभी-कभी मनुष्य उसके अस्तित्व को भूल जाता है और उसे खोजने के लिए इधर-उधर दौड़ता है, उसी प्रकार हम स्वभावत: सच्चिदानन्द परब्रह्म से अभिन्न होते हुए भी मिथ्या-बुद्धि के कारण स्वयं को सुखी या दुखी मानकर चंचल बने रहते हैं। परन्तु इस भीषण भ्रान्ति से मुक्त होना ही होगा। क्योंकि जब तक यह भ्रान्ति दूर नहीं होती, तब तक परम दु:ख-निवृत्ति नहीं हो सकती। यहाँ तक कि शास्त्र-सम्मत शुभ कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त सुख और भोग भी क्षणिक हैं; पुण्य क्षीण होने पर पुन: हमें दुखमय संसार में लौटना पड़ता है।

यह जो भयंकर अज्ञान है, इसका आरम्भ कब से है, यह कोई नहीं कह सकता, यह अनादि है। परन्तु जिस क्षण यह भ्रान्ति दूर हो जाती है और हम अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेते हैं, उसी क्षण अज्ञान का अन्त हो जाता है। दोनों क्रियाएँ एक साथ घटित होती हैं। असत् के नाश होने पर केवल सत् ही शेष रहता है। अत: अनादि होने पर भी अज्ञान का अन्त है, अज्ञान सान्त है। शास्त्रों तथा मुमुक्षु पुरुषों के समस्त प्रयासों का लक्ष्य किसी भी प्रकार से इस अज्ञान से मुक्त होना है। किन्तु जैसे वर्णमाला से अपरिचित बालक के लिए उच्च स्तर की पुस्तक पढ़ना असम्भव है,

वैसे ही धर्म-जगत् के आरम्भिक साधक शीघ्र ही परम तत्त्व को नहीं समझ सकते। यह भी सत्य है कि हमारी अवस्था प्राय: उसी बालक के समान है, मानो हम वर्णमाला से आगे बढ़ ही नहीं पा रहे।

इसलिये आचार्यों ने अधिकांश लोगों के लिए क्रमिक मुक्ति (क्रममुक्ति) का मार्ग अपनाने की शिक्षा दी है। उस मार्ग पर धैर्य, पवित्रता और परिश्रम के साथ चलने पर कुछ भाग्यशाली साधक इसी जीवन में संसार-बन्धन से मुक्त होकर धन्य हो जाते हैं। अनेक जन्मों के शुभ संस्कारों के कारण जो उच्च प्रवृत्ति लेकर जन्म लेते हैं, उनके लिए परब्रह्म की उपासना स्वाभाविक होती है। अन्य लोगों के लिए ब्रह्म की सृष्टि, स्थिति और लय की शक्तिरूपा मूर्ति का आश्रय लेकर साधना करना आवश्यक होता है।

सगुण ब्रह्म की उपासना के लिए भगवान कहते हैं कि जिन्हें देहाभिमान है, उनके लिये अव्यक्त (निर्गुण) की उपासना कठिन है। अत: नित्य कर्म (जैसे सन्ध्या-वन्दन), नैमित्तिक कर्म (विशेष अवसरों की पूजा) और प्रायश्चित आदि के पालन से मनुष्य अपने चित्त को शुद्ध कर धर्म-पथ पर अग्रसर हो सकता है। इन कर्मों के द्वारा कुछ साधक मुमुक्षुत्व प्राप्त कर गुरु से ब्रह्मज्ञान लेकर जन्म-मृत्यु से परे जा सकते हैं। शास्त्र कहते हैं –

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिण:।
साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना ।।

साधकों के हित के लिए वह चिन्मय, अद्वितीय, निष्कल और अशरीरी ब्रह्म स्वयं ही रूप की कल्पना करता है।

आचार्य शंकर भी कहते हैं कि साधकों पर अनुग्रह करने के लिए परमेश्वर माया द्वारा रूप धारण करते हैं। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं –

माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं मैवं मां द्रष्टुमर्हसि ।।

हे नारद ! यह विविध रूपों वाली माया मेरी ही सृष्टि है, इसी कारण तुम मुझे गुणयुक्त रूप में देखते हो, अन्यथा तुम मुझे इस प्रकार देख ही नहीं सकते।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है – मूर्तिपूजा से सीधे मुक्ति नहीं मिलती, किन्तु यह मुक्ति के मार्ग में सहायक होती है। मूर्तिपूजा की निन्दा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह अनेक लोगों के मन को अद्वैत ज्ञान के योग्य बनाती है।

अत: सच्चिदानन्द ब्रह्म की कल्पना के लिए किसी प्रतीक का आश्रय लेना आवश्यक है। इस विषय में साधक की व्यक्तिगत रुचि महत्त्वपूर्ण होती है। उस प्रतीक में प्रियतम आत्मीय भाव का आरोप करना स्वाभाविक है।

सांसारिक सम्बन्धों में मातृ-सम्बन्ध सबसे दृढ़, मधुर और नि:स्वार्थ माना गया है। इसलिए अधिकांश लोग भगवान की उपासना मातृ-भाव में करना अधिक सहज अनुभव करते हैं।

बंगाल की परम्परा में यह मातृ-भाव विशेष रूप से विकसित हुआ है। श्रीचैतन्य महाप्रभु और श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में इसका सुन्दर उदाहरण मिलता है। श्रीरामकृष्णदेव ने अपने जीवन के आदि से अन्त तक जगन्माता की ही साधना की और स्वयं को सदा उनके शिशु के रूप में अनुभव किया। इसीलिए मातृभाव से भगवान की उपासना हमारे समाज में अत्यन्त व्यापक और सुदृढ़ आदर्श बन गई है। शारदीय दुर्गा-पूजा इसी मातृभाव की साधना का एक अत्यन्त श्रेष्ठ माध्यम है।

बंगाल में यह दुर्गापूजा सर्वदा शोभायमान हो रही है। अन्य किसी प्रदेश में शारदीय दुर्गा देवी की पूजा इतनी व्यापक रूप से प्रचलित नहीं है। वर्ष की छह ऋतुओं का इतना सुन्दर प्रकट रूप मानो केवल बंगाल में ही देखने को मिलता है। शरद ऋतु के प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण प्रकृति जगन्माता की पूजा के लिए मानो तैयार होने लगती है। शरद के बिखरे मेघ, प्रवहमान नदियाँ, प्रस्फुटित पुष्प, आकाश, वायु, चन्द्र, सूर्य और ग्रह-समूह, सब कुछ देवी के आगमन की प्रतीक्षा में चंचल हो उठते हैं, चिन्मयी देवी के स्वागत के लिए व्याकुल हो जाते हैं। बंगाली समाज भी जाति-वर्ण-भेद से ऊपर उठकर देवी के स्वागत की तैयारी करने लगता है। किसान, व्यापारी, गृहस्थ, संन्यासी, सबके मन में आनन्द का संचार होता है।

इस पूजा की बाह्य व्यवस्था भी अत्यन्त विस्तृत होती है। अत: इसकी तैयारी लम्बे समय तक चलती रहती है। बंगाल में 'पूजा' शब्द का व्यापक अर्थ ही दुर्गापूजा बन गया है। देश-विदेश में रहने वाले सभी बंगालियों का मन पूजा की स्मृति से उल्लसित हो उठता है। जो लोग जन्मभूमि में नहीं आ पाते, वे भी अपने कर्मस्थल पर सामूहिक रूप से देवी का आवाहन करते हैं। उस समय माँ के श्रीचरणों में अपनी अन्तरतम की कामना अर्पित किए बिना मानो मन को शान्ति नहीं मिलती।

बंगाल के राष्ट्रीय जीवन के साथ भी दुर्गापूजा का गहरा सम्बन्ध है। यहाँ समृद्धि और सामाजिक प्रतिष्ठा की एक प्रमुख अभिव्यक्ति दुर्गापूजा का आयोजन है। पहले देखा जाता था कि जैसे ही आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती, घर में दुर्गापूजा की व्यवस्था की जाती थी। किन्तु आज विदेशी सभ्यता के प्रभाव से स्थिति बदलती जा रही है, यह निस्सन्देह दुख का विषय है।

इस सन्दर्भ में एक और बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है – सभी का एकत्र होना, मिलकर देवी का प्रसाद ग्रहण करना और निष्कपट आनन्द का उपभोग करना, दुर्गापूजा का अंग माना जाता है। पूजा की सभी सामग्री देशी होती है और समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों का सहयोग आवश्यक होता है। पूजा में व्यय हुआ धन समाज के विभिन्न वर्गों में वितरित होता है और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सबके आनन्द का कारण बनता है। इस प्रकार दुर्गापूजा व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन को समृद्ध करती आई है।

देवी-पूजन का प्रचलन हिन्दू दार्शनिकों का एक अद्वितीय योगदान है। देवी-पूजा के प्रमुख व्याख्याता स्वामी सारदानन्द ने कहा है – ''दुर्गन्धियुक्त कीचड़ में स्थित होकर भी जैसे मधुर सुगन्धयुक्त कमल खिलता है, उसी प्रकार मनुष्य की इन्द्रिय-सुख, भोग-वासना और आसक्ति से युक्त सकाम भक्ति से ही क्रमश: मानव-मन ने नारी-मूर्ति में जगदम्बा की ह्लादिनी शक्ति की उपासना करना सीखा। त्रिजगत्-प्रसूता शक्ति की विराट नारी-रूप में कल्पना कर उसके आधार पर जगन्माता की उपासना कर मनुष्य कृतार्थ हुआ। जब मनुष्य प्रवृत्तियों के जटिल वन में देवी के प्रत्यक्ष दर्शन से वंचित था, तब हिमालय के दिव्य शृंगों पर उसने समस्त नारीत्व के समन्वित रूप हेमवती उमा का प्रथम दर्शन किया और धन्य हुआ। इस प्रकार भारत के ऋषियों ने नारी-महिमा का प्रथम अनुभव और प्रचार किया। संसार मोहित होकर नारी-रूप में निष्काम मातृ-पूजा के इस आदर्श को अपनाने लगा। हे देवि ! भारत ही वह भूमि है, जिसने तुम्हारी निष्काम पूजा का प्रथम प्रसार किया और तुम्हें कुलदेवी के रूप में प्रतिष्ठित किया।''

देवी-पूजा के इस आदर्श को यथार्थ रूप में ग्रहण करने के बावजूद काल-प्रभाव से हम उससे बहुत दूर हट गए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। एक ओर समय का प्रभाव और दूसरी ओर विदेशी संस्कृति का प्रसार इसका कारण है। जिस देवी-पूजा से मनुष्य सर्वतोमुखी समृद्धि प्राप्त कर सकता है, उसी को करते हुए भी हम दुर्बल, धर्महीन और दु:खी क्यों हैं? निश्चय ही हमारी पूजा विधिपूर्वक नहीं हो रही है। स्वामी सारदानन्द कहते हैं – ''यदि पूजा विधि और श्रद्धा से रहित हो, तो उसका पूर्ण फल नहीं मिलता, बल्कि कभी-कभी विपरीत परिणाम भी हो सकता है।''

पाश्चात्य समाज जो जीवन के परम आदर्श से अपरिचित है, वह वासनाओं से प्रेरित होकर ही देवी की उपासना करता है। वे भोग के लिए शक्ति की उपासना करते हैं और उसके फलस्वरूप भौतिक सुख भी प्राप्त करते हैं, किन्तु मोक्ष के विषय में वे अज्ञानी रहते हैं। हमारा आदर्श भिन्न है, किन्तु अपनी परम्परा को भूल जाने के कारण हम दोनों ही दिशाओं में हानि उठा रहे हैं। बाह्य पूजा के होते हुए भी उसमें प्राण नहीं रह गया है।

सच्ची पूजा के लिए अन्त:करण की पूर्ण समर्पण-भावना आवश्यक है। जैसा श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – 'भगवान के प्रति वैसा ही आकर्षण होना चाहिए जैसा सती का पति से, कंजूस का धन से और विषयी का विषयों से होता है।''

एकाग्रता और तीव्र व्याकुलता से सब कुछ सम्भव हो जाता है। इस सन्दर्भ में महर्षि वेदव्यास की एक घटना स्मरणीय है। पुत्र शुकदेव के वियोग में वे व्याकुल होकर 'हा पुत्र !' पुकारते हुए विचरने लगे। उस करुण पुकार के प्रभाव से स्वयं अद्वैत ब्रह्म भी मानो सगुण होकर 'मैं हूँ' के रूप में उत्तर देने लगा। इससे स्पष्ट है कि गहन भाव से की गई पुकार निराकार को भी साकार बना देती है। भगवान समय-समय पर अवतार लेकर इस सत्य को प्रमाणित करते हैं। इस युग में श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन द्वारा यह दिखाया कि किस प्रकार मृण्मयी प्रतिमा में भी चिन्मयी देवी का अनुभव किया जा सकता है। उन्होंने प्रत्येक नारी में जगदम्बा का दर्शन किया और समस्त जगत् में एक ही परम तत्त्व का अनुभव किया।

श्रीरामकृष्ण का जीवन आज भी साधकों को प्रेरणा देता है। उनके जीवन का प्रभाव इतना व्यापक है कि पाश्चात्य विद्वान भी उनमें ईसा मसीह के आदर्श का प्रतिबिम्ब देखते हैं। अत: उनके जीवन के माध्यम से देवी-पूजा सहज ही

शेष भाग पृष्ठ ४५५ पर

रामगीता (७/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

कितना बड़ा व्यंग्य है? रावण कितना अहंताग्रस्त, ममताग्रस्त है ! किस तरह से वह निरन्तर उसमें डूबा हुआ है ! रावण की जो चार सौ कोस में फैली हुई स्वर्णिम ममता है, उस पर उसका ध्यान नहीं है, पर हनुमानजी की ममता को नष्ट करूँ, ऐसा उसके अन्त:करण में अभिमान आया। उसका परिणाम क्या हुआ? हनुमानजी की पूँछ तो वह जला नहीं पाया। हनुमानजी की पूँछ नहीं जली। क्योंकि वह न जलने वाली ममता थी। जिस ममता को न तो जलाया जा सकता है और न जलाया जाना चाहिए, वैसी हनुमानजी की ममता है। रावण ने हनुमानजी की पूँछ के लिए कहा कि इसको कपड़े से आवृत कर दो, घी, तेल से भिगा दो। हनुमान जी की पूँछ में ज्यों ही कपड़ा लपेटकर तेल और घी से भिगोया गया, तो हनुमानजी ने पूँछ बढ़ाना प्रारम्भ किया। हनुमानजी की ममता न तो जल सकती है और न ही उसकी लम्बाई को कोई नाप सकता है। उसे न तो वस्त्र से कोई ढक सकता और न ही उसे घी-तेल में भिगोया जा सकता है। हनुमान की वह पूँछ जिसे नापी नहीं जा सकती –

बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला ।

कौतुक कहँ आए पुरबासी । ५/२४/५,६

नगर में समाचार फैल गया कि बन्दर तो आज बड़ा तमाशा दिखा रहा है। बन्दर तमाशा दिखाता है, तो आज भी लोग देखने के लिए एकत्र हो जाते हैं। लंकावासी भी जब देख रहे थे, तो तमाशा ही समझ रहे थे। अच्छा, यह बन्दर कुछ जादूगर भी है क्या? रावण के यहाँ लंका में चमत्कारों को देखकर कोई बहुत प्रभाव नहीं पड़ता था कि कोई बहुत बड़ी बात हो गई। वहाँ तो सब बड़े चमत्कारी थे। तो हनुमानजी की पूँछ बढ़ रही है, इसे देखकर जरा भी आश्चर्य किसी राक्षस को नहीं हुआ। रावण को भी नहीं हुआ। क्योंकि वे लोग स्वयं अपना शरीर बढ़ा लेते हैं। रावण न जाने कितने रूप बना लेता है। तो उसको यही लगा कि एक बन्दर आया है, चलो जरा इसका भी तमाशा देख लें। किन्तु उसे यह भी लगा कि यह तो बड़ा विचित्र बन्दर है ! खेल क्या कर रहा है? गोस्वामीजी ने वहाँ शब्द भी खेल ही लिखा है – **बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला।**

और राक्षस क्यों आए?

कौतुक कहँ आए पुरबासी ।।

लंकावासी सोचते हैं कि चलो देखें, कैसा बन्दर आया है ! बड़ा विचित्र है ! पहले तो इतना उत्पात मचा डाला और अब पूँछ बढ़ रही है। तब क्या किया उन लोगों ने? तब उनको लगा कि जरा इस बन्दर को भी तो बताएँ कि इस दृश्य का हम लोगों की दृष्टि में क्या मूल्य है?

मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ।

वे लोग जाकर लात मारते हैं और हनुमानजी की हँसी उड़ाते हैं। यह हास्य रस बहुत सावधान रहने का रस है। साहित्य के नौ रसों में सबसे साधारण रस है हास्य रस। इसका मनोविज्ञान आपने सोचा कि यह साधारण क्यों है? साहित्य के ग्रन्थ में करुण रस और श्रृंगार रस; इन दो रसों को सर्वोत्कृष्ट महत्त्व दिया गया और हास्य रस को बहुत ही कम महत्त्व दिया गया। जीवन में हास्य का भी महत्त्व है, आवश्यकता है, लेकिन हास्य को निन्दनीय रूप में ही देखा गया। उसको अन्यथा अर्थ में न ले लीजिएगा कि आप हँसना ही छोड़ दें या न हँसने की कोशिश करें। ऐसा आप भी कर नहीं पायेंगे। पर हँसी के पीछे, जो मनोविज्ञान है, वह क्या है? आजकल जब भी कोई कवि सम्मेलन होता है, उसमें अगर एक हास्य रस का कवि आ जाए, तो जितने

अन्य कवि होते हैं बेचारे, उनकी स्थिति शोचनीय हो जाती है। इसलिए एक समय ऐसा था, जब जितने देश के उच्च कोटि के कवि थे, उन्होंने सम्मेलन में जाना बन्द कर दिया। उन्होंने कहा – भई, वहाँ जाने से क्या लाभ? इसलिए संस्कृत में, अन्य नाटकों में भी हास्य रस को साधारणतः स्थान दिया गया। आप देखेंगे कि किसी भी संस्कृत नाटक में हँसी को भी लाया जाता है, पर वह विदूषक के रूप में एक पात्र द्वारा लाया जाता है। वह कुछ देर के लिये आकर हँसा देता है। आजकल उसकी बड़ी प्रशंसा भी होती है और वह स्वास्थ्य के लिए बड़ा उपयोगी बताया जाता है। मैं बम्बई में एक दिन घूमने गया, तो देखा कि पचास-सौ लोग खूब जोर-जोर से हँस रहे हैं। क्या हो रहा है? बोले – हँसी का व्यायाम कर रहे हैं। मैंने कहा – ठीक है भई। कहते हैं कि हँसने से फेफड़ों में शक्ति आती है और नई शक्ति मिलती है। वे और तो कुछ नहीं, बलात् हँस करके व्यायाम कर रहे थे। हास्य को उस अर्थ में तो जाने दीजिए, पर हास्य के सम्बन्ध में गोस्वामीजी रामचरितमानस में कहते हैं – जो अच्छे लोग होंगे, उनको तो रस आएगा ही, लेकिन जो बुरे लोग हैं, जिनको कवित्व का सही ज्ञान नहीं है और श्रीराम के चरणों में प्रेम नहीं है, उनके लिए वे व्यंग्य भरा वाक्य कहते हैं –

कबित रसिक न राम पद नेहू ।
तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू ।। १/८/३

वे भी हँसेंगे, चलो भई अन्य रस अच्छा नहीं लगा, तो हास्य रस तो पसन्द आ ही गया उनको। फिर वे एक कड़वी बात कह देते हैं। कवि अन्यथा नहीं लेंगे, सावधानी से अर्थ लेना चाहिए। उन्होंने कहा कि यदि इस तरह कोई मेरी राम कथा पर हँसते हैं, तो वे कौन हो सकते हैं?

हँसिहहिं क्रूर कुटिल कुबिचारी। १/७/१०

तो हास्य अपने स्थान पर है। वह स्वास्थ्य की बात तो जाने दीजिए। जीवन में आनन्द की अभिव्यक्ति के लिये हास्य एक माध्यम है। वह भी एक श्रेष्ठ पक्ष है। पर उसका सबसे निकृष्ट पक्ष क्या है? आप हास्य रस की कविता पर क्यों प्रसन्न होते हैं, क्यों इतने झूमते हैं? क्योंकि उसमें केवल दूसरों की हँसी उड़ाई जाती है। नेता की हँसी उड़ाई जाए, अधिकारी की हँसी उड़ाई जाए, साधुओं की हँसी उड़ाई जाए, तो मानों हम दूसरों की बुराई सुनकर आनन्द लेते हैं। हँसने में व्यक्ति का केवल हार्दिक आनन्द है, तो ठीक है और हँसने में अगर व्यक्ति संतुलित है, तो भी ठीक है। नहीं तो देहात में भी वह बड़ी प्रसिद्ध कहावत है। क्या? बोले –

रोग की जड़ खाँसी। झगड़े की जड़ हाँसी ।।

इसका तात्पर्य क्या है? हँसने में बहुधा हमारे मन में सामने वाले को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति रहती है। उसका दोष दिखाने के लिए आप जब हँसी में इतने आनन्दित होते हैं, तो उसका अभिप्राय है कि आपको इस प्रकार की प्रवृति में ही आनन्द आता है कि कैसे खिल्ली उड़ाई जा रही है, कैसी हँसी उड़ाई जा रही है। तब आप अपने को देखना बन्द करके उसके उसी रूप में डूब जाते हैं। गोस्वामीजी ने इसका संकेत बार-बार किया कि हास्य का उद्देश्य अगर यही हो, यह ठीक नहीं है। बहुधा यही होगा, जब आप हँसी उड़ाएंगे, तो दूसरे की कमी को लेकर ही तो हँसी उड़ाएंगे। उसका परिणाम यह होगा कि संघर्ष प्रारम्भ हो जायेगा। इसलिए हँसी भले ही आपको बहुत श्रेष्ठ वस्तु लगे, पर उसे उचित भाग में होना चाहिए।

इसीलिए गोस्वामीजी ने कहा, कलियुग में किसको गुणवान मानते हैं? किसी ने कहा कि बीरबल तत्काल बहुत बढ़िया उत्तर देनेवाला था। तो गोस्वामीजी ने कहा कि हाँ, सुना तो है। आप लोग भी पढ़ते होंगे। अकबर-बीरबल-विनोद, इस नाम से पुस्तकें मिलती हैं। उसको लोग पढ़ते हैं। उसके लतीफें याद भी कर डालते हैं। अब वह उत्तर बीरबल ने दिया या नहीं दिया, उसकी सम्भावना तो कुछ कम ही लगती है कि उसने ऐसी बातें कही। लेकिन हाँ, बीरबल ने कहा तो बड़ा आनन्द आ रहा है। गोस्वामीजी ने यही कहा कि क्या अपनी बुद्धिमत्ता और उत्तर देने की कला का यही उपयोग है कि व्यक्ति दूसरों को, राजा को, हँसा दे या उसको प्रसन्न करने के लिए अपनी सारी बौद्धिक क्षमता और कला उसी में लगा दे। इसीलिए गोस्वामीजी ने जब कलियुग का लक्षण लिखा, तो उन्होंने कहा, गुणणान तो केवल उसको मानते हैं –

जो कह झूँठ मसखरी जाना ।
कलिजुग सोइ गुनवंत बखाना ।। ७/९७/६

जो बढ़िया से बढ़िया झूठ बोले और मसखरी करे, वही बड़ा गुणवान है। लोग कहते हैं, वाह, कैसा व्यंग्य करता है ! कैसा कलाकार है ! सावधान रहने की आवश्यकता है, हँसना बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। हँसी का रस अगर आपको शक्ति देता है, आनन्द देता है, तो हँसना उपयोगी है। लेकिन अगर आपकी हँसी सामने वाले को कष्ट दे दे, तब तो वह हँसी किसी काम की नहीं है। **(क्रमशः)**

दुर्गोत्सव महास्नान की मृत्तिका : मिथक व शास्त्रीय गूढ़ार्थ

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दुर्गा-पूजा विशेष

दुर्गोत्सव वस्तुतः हिन्दुओं का एक महान धार्मिक अनुष्ठान है। दुर्गा पूजा का नाम आते ही हमारे मन में स्वप्न और सम्भावनाओं के बीच आनन्द की लहर दौड़ उठती है। निःसन्देह इस उत्सव के आनन्द के पीछे एक विशाल तत्त्व-रत्नाकर निहित है। केवल दुर्गापूजा पर शोध करते हुए एक समर्पित शोधकर्ता अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है। देवी के आविर्भाव और विकास, मूर्ति का रहस्य, पूजा की सामग्री और विधि, विभिन्न पद्धतिगत विविधताएँ, इस पूजा का शास्त्रीय महत्त्व तथा इसके सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भ और प्रभाव, ऐसे अनेक विषयों पर गम्भीर शोध किया जा सकता है। किन्तु इस आलेख में हम दुर्गापूजा में प्रयुक्त एक विशेष सामग्री देवी दुर्गा के महास्नान में प्रयुक्त मृत्तिकाओं पर विचार करेंगे। लिङ्गपुराण में कहा गया है –

शारदीया महापूजा चतुष्कर्ममयी शुभा।
तां तिथित्रयमासाद्य कुर्यात् भक्त्या विधानतः।।

'चतुष्कर्म' का अर्थ है – स्नपन, पूजन, बलिदान और होम। दुर्गापूजा में 'स्नपन' अर्थात् 'महास्नान', एक अनिवार्य अंग है। सप्तमी, अष्टमी और नवमी तिथि में देवी को विभिन्न उपचारों द्वारा महास्नान कराया जाता है। इन उपचारों में कुछ विशेष प्रकार की मिट्टियों का उल्लेख मिलता है, जैसे – राजद्वारमृत्तिका, चतुष्पथमृत्तिका, वृषशृंगमृत्तिका, गजदन्तमृत्तिका, नदी के दोनों तटों की मिट्टी, गंगा की मिट्टी, सर्वतीर्थमृत्तिका, वाल्मीकि (चींटी के बिल) की मिट्टी, सागरमृत्तिका, गोष्ठमृत्तिका, वराहदन्तमृत्तिका, देवद्वारमृत्तिका तथा वेश्याद्वारमृत्तिका।

दुर्गापूजा में विभिन्न प्रकार की मिट्टियों का संग्रह और प्रयोग केवल बाहरी अनुष्ठान नहीं है, बल्कि अत्यन्त गहरे आध्यात्मिक, तान्त्रिक और सांस्कृतिक प्रतीकों से सम्बद्ध है। समस्त सृष्टि के विविध तत्त्वों और शक्तियों को एकत्र कर देवी के सर्वव्यापी स्वरूप का आवाहन करने की प्रक्रिया है। प्रत्येक मृत्तिका का अपना विशिष्ट महत्त्व है –

१. राजद्वारमृत्तिका (राजा के द्वार की मिट्टी) – यह सत्ता, शासन और लोकव्यवस्था का प्रतीक है। देवी को समस्त राजसत्ता की अधिष्ठात्री मानकर यह मिट्टी अर्पित की जाती है, जिससे समाज में धर्मयुक्त शासन और न्याय स्थापित हो।

२. चतुष्पथमृत्तिका (चौराहे की मिट्टी) – चौराहा जीवन के निर्णय, दिशा और विकल्प का प्रतीक है। यह मिट्टी देवी को समर्पित कर साधक यह प्रार्थना करता है कि उसके जीवन के सभी मार्ग सही दिशा में अग्रसर हों।

३. वृषशृंगमृत्तिका (बैल के सींग से लगी मिट्टी) – वृषभ धर्म, श्रम और स्थिरता का प्रतीक है तथा भगवान शिव का वाहन भी। शास्त्रों में 'वृषभो हि भगवान् धर्मः' कहा गया है तथा उसका शृंग धर्मोत्कर्ष का प्रतीक है। वृषशृंग-मिट्टी धार्मिकता और कर्मशीलता को दर्शाती है।

४. गजदन्तमृत्तिका (हाथी के दाँत की मिट्टी) – हाथी ऐश्वर्य, बुद्धि और राजकीय वैभव का प्रतीक है। यह मिट्टी समृद्धि और विवेक के लिए अर्पित होती है।

५. नदी के दोनों तटों की मिट्टी – नदी जीवन के प्रवाह और संतुलन का प्रतीक है। दोनों तटों की मिट्टी से संतुलन (द्वैत का सामंजस्य) और जीवन में समरसता की कामना की जाती है।

६. गंगामृत्तिका – गंगा पवित्रता, मोक्ष और दिव्यता की प्रतीक है। यह मिट्टी सभी पापों के शुद्धिकरण और आध्यात्मिक उत्थान का संकेत देती है।

७. सर्वतीर्थमृत्तिका – यह विभिन्न तीर्थों की मिट्टी का समावेश है, जो दर्शाता है कि देवी में सभी तीर्थों की शक्ति समाहित है।

८. वाल्मीकि-मृत्तिका (चींटी के बिल की मिट्टी) – चींटी का बिल प्रकृति की सूक्ष्म सृजनशक्ति और परिश्रम का प्रतीक है। यह मिट्टी सृजन और निरन्तर कर्म की भावना को दर्शाती है।

९. सागरमृत्तिका – सागर असीमता, गहराई और अनन्तता का प्रतीक है। यह देवी के अनन्त स्वरूप और विराट शक्ति को प्रकट करता है।

१०. गोष्ठमृत्तिका (गौशाला की मिट्टी) – गाय पवित्रता, मातृत्व और पोषण का प्रतीक है। यह मिट्टी समृद्धि, शान्ति और सात्त्विकता का द्योतक है।

११. वराहदन्तमृत्तिका – भगवान वराह ने पृथ्वी का उद्धार किया था, अत: यह मिट्टी रक्षा, उत्थान और पुन:स्थापन की शक्ति का प्रतीक है।

१२. देवद्वारमृत्तिका (मंदिर के द्वार की मिट्टी) – यह दैवी ऊर्जा के प्रवेशद्वार का प्रतीक है। इससे साधक देवी के प्रति भक्ति और समर्पण प्रकट करता है।

१३. वेश्या द्वारमृत्तिका – अन्तिम उस मृत्तिका का प्रयोग होता है, जिसके विषय-प्रवेश हेतु पर्याप्त भूमिका की आवश्यकता है। हम हिन्दू धर्म को 'all inclusive' तो कह सकते हैं, किन्तु इसके पीछे के गूढ़ शास्त्रीय रहस्यों से अनभिज्ञ हैं, जो लगभग गौण ही हो गया है।

मीमांसकों व स्मृतिकारों ने शास्त्रों का गहन अध्ययन कर हमें 'दुर्गोत्सव तत्त्व', 'दुर्गोत्सव विवेक', 'दुर्गोत्सव निर्णय', 'दुर्गोत्सव प्रकरण', 'दुर्गोत्सव चन्द्रिका', 'दुर्गाभक्तितरंगिणी' इत्यादि पंचामृत सदृश प्रसादस्वरूप निबन्धात्मक ग्रन्थ दिए हैं। उनके द्वारा दी गई किसी भी आदेश की अवहेलना पूजा में अंगहानि होगी।

सामान्यत: 'वेश्या' का अर्थ गणिका होता है। 'वेश्या द्वारमृत्तिका' का अर्थ है गणिकालय के द्वार की मिट्टी। दुर्गापूजा में इस गणिकालय के द्वार की मिट्टी का उपयोग लगभग सर्वत्र प्रचलित है। किन्तु क्या यह शास्त्रसम्मत है? एक शब्द में इसका उत्तर है – नहीं। क्योंकि 'वेश्या' शब्द काव्यादि में गणिका अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु शास्त्रादि में 'वेश्या' एक भिन्नार्थक पारिभाषिक शब्द है। हम लोकप्रचलित काव्यार्थ को ही शास्त्रीय कर्म में प्रामाण्य रूप में ग्रहण करने के कारण 'वेश्याद्वारमृत्तिका' का अर्थ गणिकालय की मिट्टी मान बैठे हैं।

यद्यपि इसके समर्थन में कुछ पण्डित यह कहते हैं कि वेश्याद्वार पुण्यशोषी होता है। जो पुरुष वेश्यागृह में प्रवेश करता है, उसका समस्त पुण्यबल वह वेश्याद्वार शोषण कर लेता है। वेश्यागामी पुरुष पुण्यहीन होकर उस पापगृह में प्रवेश करता है। चूँकि वेश्याद्वार सभी पुरुषों का पुण्य शोषण करता है, अत: उस द्वार से सम्बद्ध मिट्टी पवित्र और देवी-अर्चन के योग्य मानी जाती है। यह व्याख्या सुखकर होते हुए भी शास्त्रसम्मत नहीं है। क्योंकि पुण्यवान व्यक्ति का पुण्यफल कोई तरल पदार्थ नहीं है। पाप-पुण्य मनुष्य के जन्म-जन्मान्तरार्जित सूक्ष्म संस्कार हैं; उन्हें किसी भी प्रकार से शोषित नहीं किया जा सकता। क्या वेश्याद्वार पर कोई सूक्ष्म शोषकपत्र (ब्लॉटिंग पेपर) लगा रहता है?

यहाँ तक कि हमारी एक प्रचलित धारणा है कि पाप करने के बाद पुण्य करने से पाप का भाग नहीं रह जाता, यह भी शास्त्रीय रूप से भ्रान्ति है। पाप-पुण्य में काटा-काटी नहीं होती। पाप और पुण्य के कुफल और सुफल मनुष्य को पृथक्-पृथक् भोगने पड़ते हैं। अत: वेश्याद्वार को पुण्यशोषी मानकर उसकी मिट्टी को माँ के महास्नान के लिए ग्रहण किया जा सकता है, यह मत निरस्त किया जा सकता है।

हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं कि 'वेश्या' शब्द शास्त्रादि में पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'वेश्या' शब्द के वर्णादिगत अर्थ की व्याख्या करने पर यह तत्त्व कुछ स्पष्ट होगा। 'वेश्या' शब्द का वर्ण-विश्लेषण इस प्रकार है – वेश्या = व् + ए + श् + य + आ ।

श्रीपञ्चानन शास्त्री सम्पादित तन्त्राभिधान के वर्णाभिधान के

आधार पर 'वेश्या' शब्द का वर्णगत अर्थ विश्लेषण करते हैं –

'व' का अर्थ बाल या नव – 'वकारो वरुणो बालो मेदः खड्गीश्वरोऽजरा:' अर्थात् – वरुण, बालक (शिशु), मेद (चर्बी/वसा), खड्ग धारण करने वाला ईश्वर और जो कभी जरा (बुढ़ापा) को प्राप्त न हो अर्थात् अजर।

'ए' का अर्थ – 'एकारो विजया शक्ति-र्भगसंज्ञोऽभिधायकः। पद्मनाभो महेशानि ! प्रोक्तो झिल्टीशनायकः।।' अर्थात् विजया शक्ति, 'भग' नाम से प्रसिद्ध (दैवी ऐश्वर्य का सूचक), पद्मनाभः हे महेशानि! इसे झिल्टीश (या झिल्टीशनायक) के रूप में भी कहा गया है।

'श' का अर्थ वृषघ्न – 'शकारो महेशानि ! वृषघ्नः कथितो बकः।' शकार (श) का अर्थ है – हे महेशानि ! वह वृषघ्न (अधर्म/पाप का नाश करनेवाला) तथा 'बक' (एक नाम/रूप) के रूप में कहा गया है। शास्त्रों में वृष को धर्मस्वरूप माना गया है – 'धर्मत्वं वृषरूपिणः।' अतः वृषघ्न का अर्थ धर्महानि है।

'य' का अर्थ काली – 'यकारः पवनः काली पुरुषोत्तम एव च।' अर्थात् पवन (वायु), काली, तथा पुरुषोत्तम (परम पुरुष/भगवान)।

'आ' का अर्थ प्रतिष्ठा – 'आ प्रतिष्ठा मुखं दीर्घ नारायणोऽप्यनन्तकः।' अर्थात् प्रतिष्ठा (आधार/स्थिरता), मुख (प्रमुख/आरम्भ), दीर्घ (विस्तृत/लम्बा), तथा नारायण और अनन्त (अनन्त रूपवाले भगवान)।

कुल मिलाकर अर्थ हुआ – नवजाग्रत साधनाशक्ति के सहारे धर्महानि को दूर कर कालीतत्त्व में प्रतिष्ठित साधिका ही 'वेश्या' है।

अब 'वेश्या' शब्द की वर्णादिगत दूसरी प्रकार की व्याख्या भी द्रष्टव्य है –

शास्त्र में 'व' का अर्थ माता, 'ए' का अर्थ स्वयं भगवती, 'श' का अर्थ वृषघ्न (धर्मबाधा), 'य' का अर्थ सर्वेश्वरी, 'आ' का अर्थ प्रतिष्ठा। सब मिलाकर अर्थ हुआ – माता भगवती की इच्छा से धर्मबाधा को जीतकर सर्वेश्वरित्व में प्रतिष्ठित साधिका ही 'वेश्या' है।

अब पुरुषोत्तमदेव विरचित एकाक्षरकोष के अनुसार – **'व'** का अर्थ हृदय – 'वक्षःस्थले च वः प्रोक्तो गदायां समुद्धृतः।' – वक्षस्थल (छाती) में स्थित, और गदा में स्थित/उद्धृत (धारण किया गया)

'ए' का अर्थ विष्णु – 'एकारः कथितो विष्णुः।'

'श' का अर्थ श्रेय – 'श्रेयः शश्च शान्ता निगद्यते।' – श्रेय (कल्याण), शश (चन्द्रमा/खरगोश), और शान्ता (शान्ति स्वरूपा) कहा गया है।

'य' का अर्थ त्याग – 'यशो यः कथितः शिष्टैर्यो वायुरिति शब्दितः। याने यातरि यस्त्यागे कथितः शब्दवेदिभिः।।' – यकार (य) को शिष्ट (विद्वान) लोग 'यश' कहते हैं, और उसे 'वायु' भी कहा गया है। 'यान' (गमन/सवारी), 'यात्रा' (चलना), तथा 'त्याग' के अर्थ में भी 'य' का प्रयोग शब्द-वेत्ता (विद्वान) लोग बताते हैं।

'आ' का अर्थ पितामह – 'आकारः पितामहः।'

सबके संयोजन से अर्थ हुआ – सृजनशक्ति और पालनशक्ति के सहारे, प्रवत्तिमूलक धर्माचरण द्वारा हृदय को वासनामुक्त कर जो श्रेय मार्ग में विचरण करता है, वही 'वेश्या' है।

वैष्णवाचार्य श्रीमन्मध्व विरचित मातृका-निघण्टु के अनुसार इसका अर्थ हुआ – भगवान् जो महिमामय पुरुषोत्तम, दर्पहारी दामोदर, धन-ऐश्वर्यदाता लक्ष्मीश, ज्ञानदाता वागीश तथा परम प्रेममय वासुदेव रूप में जिसके हृदय में सदैव विराजमान हैं, वही 'वेश्या' है।

अन्त में रुद्रयामलतन्त्र के अनुसार – 'व' का अर्थ भय है – 'वज्रमुष्टिर्भया भादि भूधरः पृष्ठवंशगः। ग्रामणीश्छगलण्डेशः सुरसश्च बकारकः।' अर्थात् वज्र के समान मुट्ठीवाला, भयोत्पादक, पर्वत के समान धारण करनेवाला, वंश/पीठ से सम्बन्धित, ग्राम का नेता, छगलण्ड का ईश्वर, सुरस और 'ब' अक्षर से सम्बद्ध आदि।

'ए' का अर्थ शक्ति – 'सूक्ष्माऽमृता पद्मनाभो झिण्टीशो गजवक्तकः। चरः शक्तिः कामरूपस्त्रिकोणोर्ध्वाधरो भगः।।' – अत्यन्त सूक्ष्म, अमृतस्वरूप, नाभि में कमल धारण करनेवाला (पद्मनाभ), झिण्टीश (एक विशिष्ट देव/स्थान), गजमुख (गणेश), गतिशील (चर), शक्ति, कामरूप (इच्छानुसार रूप धारणकर्ता), त्रिकोण (यन्त्र का रूप), ऊपर-नीचे स्थित और भग (सृजन/शक्ति का प्रतीक)।

'श' का अर्थ मृत्यु रूप – 'वृषघ्नः शङ्कुकर्णी च मृत्युरूपो बकेश्वरः। अस्थ्यात्मा च वरेण्यश्च वान्तो हृद्-दक्षहस्तगः।' – वृष (बैल) का नाश करनेवाला, शंख के

समान कानोंवाला, मृत्यु के समान रूप धारण करने वाला, बकेश्वर (एक विशेष देव रूप), अस्थि (हड्डी) में स्थित आत्मा, श्रेष्ठ (वरेण्य), त्याग/उत्सर्जन से सम्बन्धित (वान्त) तथा हृदय और दाहिने हाथ में स्थित शक्ति।

'य' का अर्थ हृदयगत – 'त्वगतो हृद्गतो मत्तो वाहनः पुरुषोत्तमः। क्षुधा मृगेन्द्रो यमुना बालीशो यामुनो मरुत।।' – शरीर की त्वचा और हृदय में स्थित चेतना, उन्मत्त या दिव्यावेश की अवस्था, वाहन (आधार), पुरुषोत्तम (श्रेष्ठ पुरुष), भूख (जीवन-प्रेरणा), मृगेन्द्र (सिंह के समान बलशाली), यमुना (पवित्र प्रवाह), सरल/बालसुलभ (बालीश) तथा वायु तत्त्व (मरुत) आदि।

'आ' का अर्थ गुरु – 'मुखवृत्तं गुरुः शेषो दीर्घोऽनन्तो मरुत् तथा। नारायणो विघ्नराजः प्रतिष्ठा च द्वितीयकः।' – मुख का आकार (मुखवृत्त), गुरु (आध्यात्मिक मार्गदर्शक), शेष और अनन्त (अनन्तता के प्रतीक), दीर्घ (दीर्घ स्वरूप), मरुत (वायु तत्त्व), नारायण (विष्णु), विघ्नराज (गणेश) तथा प्रतिष्ठा और द्वितीय (दूसरा स्तर/स्थिति) आदि।

ऐसे इसका अर्थ हुआ – गुरुकृपा से शक्ति प्राप्त कर जिसने हृदयगत भय और मृत्यु-रूप वासनाओं को दूर कर लिया है, वही 'वेश्या' है।

भिक्षाकर वंशज ताराशंकर रचित 'वर्ण-बीजाभिधान' के आधार पर अब 'वेश्या' शब्द के वर्णादिगत अर्थ का विवेचन करेंगे। भिक्षाकर के अनुसार 'व'-कार का अर्थ अभया, 'ए'-कार का अर्थ ज्ञानशक्ति, 'श'-कार का अर्थ श्रेय, 'य'-कार का अर्थ स्थिरात्मा, 'आ'-कार का अर्थ विरजा (रजोगुण-विदूरिणी)। अतः अर्थ निर्धारण होता है – अभया ज्ञानशक्ति के द्वारा रजोगुण का परित्याग कर जो स्थिरात्मा (स्त्री/साधिका) श्रेय मार्ग का आश्रय ग्रहण करती है, वही 'वेश्या' है।

अब १३२७ शकाब्द में श्रीयज्ञेश्वर शर्मा कृत 'वर्ण-बीजाभिधानम्' के आधार पर 'वेश्या' शब्द का वर्णादिगत अर्थ देखें – 'व'-कार का अर्थ रात्रि, 'ए'-कार का अर्थ श्रद्धा, 'श'-कार का अर्थ वरेण्य, 'य'-कार का अर्थ हृदय, 'आ'-कार का अर्थ प्रतिष्ठा। अतः इसका अर्थ मिलता है – जो रात्रिकाल में श्रद्धापूर्वक वरेण्य तत्त्व को हृदय में स्थापित कर साधना करती है, वही 'वेश्या' है।

अब तक के समस्त विवेचनों से यह स्पष्ट है कि शास्त्रों में 'वेश्या' शब्द का प्रयोग गणिका अर्थ में नहीं हुआ है। चाहे वैष्णव शास्त्र हो, तन्त्र हो अथवा वैदिक निघण्टु हो, सर्वत्र 'वेश्या' शब्द का प्रयोग उच्चमार्गस्थ स्त्री या साधिका के अर्थ में हुआ है। अब तन्त्रशास्त्र का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत कर इस विषय को और भी सन्देहरहित करेंगे।

तान्त्रिक वीरभाव की साधना में, जो साधक (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा, मैथुन, इन पंचमकारों के द्वारा देवीपूजा करते हैं) जिन विशिष्ट साधिका स्त्रियों की पूजा करते हैं, तथा वे साधिका स्त्रियाँ साधक पुरुष को भैरवरूप मानकर स्वयं सिद्धि प्राप्त करती हैं, ऐसी स्त्रियों को तन्त्र में 'वेश्या' कहा गया है।

पूर्णाभिषिक्ता – महाविद्या-मन्त्र में तन्त्रानुसार दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् श्रीगुरुदेव शिष्य एवं शिष्या को मन्त्रपूत सिद्धसलिल द्वारा शक्ताभिषिक्त करते हैं। शक्ताभिषिक्त साधक या साधिका जब पुरश्चर्या आदि गुरु-निर्दिष्ट साधन के द्वारा शक्तिमान हो जाते हैं, तब श्रीगुरुदेव द्वारा मन्त्रपूत सिद्धकुलद्रव्य से उनका पुनः अभिषेक किया जाता है। इसी समय से साधक या साधिका पंचमकार के सहयोग से देवी-पूजा का अधिकार प्राप्त करते हैं तथा साधक-समाज में आचार्यरूप में मान्य होते हैं। इस दुर्लभ अभिषेक को ही तन्त्रशास्त्र में 'पूर्णाभिषेक' कहा गया है। पूर्णाभिषिक्त साधक या साधिका स्वयं शिव या पार्वती के रूप में जगत् में विचरण करते हैं।

चतुर्दश पटल के षोडश श्लोक में भगवान शिव कहते हैं –

एवंविधा पुरश्चर्या वेश्यायाश्च कुलेश्वरी।
एवंविधा भवेद् वेश्या न वेश्या कुलटा प्रिये।।[२]

अर्थात् – हे कुलेश्वरी! इस प्रकार वेश्या की पुरश्चर्या कही गई। जो इस प्रकार आचरण करती हैं, वही वेश्या हैं; वे कुलटा नहीं हैं।

वेश्या की साधना-विधि भी इस पटल में दी गई है –

कुलमार्गे प्रवृत्ता या सा वेश्या मोक्षदायिनी।
चुम्बनालिङ्गनाघातं रतिविग्रहदर्शनम्।।
आमन्त्रणं त्रिसन्ध्यं च भगलिङ्गस्य कीर्तनम्।
वेश्यानां जपाङ्गेदं शंकरेण पुरोदितम्।।
जपाङ्गेन विना वेश्या न कुर्यात् स्थिरसंगमम्।
जपाङ्गं प्रत्यहं कुर्यात् सा शिवैः सह मोदिता।
निशायां प्रजपेत् मन्त्रं स्वयम्भूशिवयोगतः।

वेश्यानां जपमात्रं तु पुरश्चर्यमुच्यते।।
विपरीता जपेत् मन्त्रं सा काली नात्र संशयः ।[३]

– जो वेश्या कुलमार्ग में प्रवृत्त होती है, वह मोक्ष-दायिनी है। चुम्बन, आलिङ्गन, आघात, रतिविग्रहदर्शन, त्रिसन्ध्या-आमन्त्रण, भगलिङ्ग-कीर्तन, ये सब उसके जप के अंग हैं। जप के बिना वेश्या संयोग नहीं करती। वह प्रतिदिन शिव के साथ आनन्दपूर्वक जप करती है। रात्रि में मन्त्रजप करती है। वेश्याओं के लिए जप ही पुरश्चर्या है। जो विपरीत मार्ग से जप करती है, वह काली है, इसमें संशय नहीं है।

यहाँ चुम्बन, आलिङ्गन आदि का अर्थ लौकिक नहीं, अपितु तान्त्रिक पारिभाषिक है – आलिंगन = न्यास, चुम्बन = ध्यान, आघात = प्राणायाम, रतिदर्शन = जप, आमन्त्रण = आवाहन, भगलिंग-कीर्तन = शिव-शक्ति नामस्मरण।

अनेक तन्त्रों में देवप्रतिष्ठा से पूर्व ब्राह्मण, गुरु आदि के साथ वेश्याओं का भी आशीर्वाद ग्रहण करने का विधान है। देवप्रतिष्ठा में वेश्याद्वार की मिट्टी की आवश्यकता भी बताई गई है। गुप्तसाधनतन्त्र में – 'एवंविधा भवेद् वेश्या न वेश्या कुलटा प्रिये। कुलटासंगमाद् देवि रौरवं नरकं व्रजेत।।'

तन्त्र में पूर्णाभिषिक्त शक्ति को 'वेश्या' कहा गया है। व्यभिचारिणी गणिका 'वेश्या' पद की अधिकारी नहीं है। काली, तारा, त्रिपुरा आदि दशमहाविद्याओं तथा उनके आवरणदेवताओं को भी 'वेश्या' कहा गया है।

महाकालसंहिता में कहा गया – 'तस्माद् वेश्या वरा मता'। तान्त्रिक नवकन्याओं में भी वेश्या का उल्लेख है –

पञ्चाचारेण देवेशि कुलशक्तिं प्रपूजयेत्।
नटी कापालिकी वेश्या रजकी नापिताङ्गना।
ब्राह्मणी शूद्रकन्या च तथा गोपालकन्यका।
मालाकारस्य कन्या च नवकन्याः प्रकीर्तिताः।।

अर्थात् – हे देवेशि! पञ्चाचार (पाँच विधियों) से कुलशक्ति की पूजा करनी चाहिये। नटी (नर्तकी), कापालिकी, वेश्या, रजकी (धोबिन), नापित की स्त्री (नाईन), ब्राह्मणी, शूद्र कन्या, तथा गोपाल/यादव की कन्या, और मालाकार (माली) की कन्या, ये नौ कन्याएँ कही गई हैं। तन्त्र में सात प्रकार की वेश्याएँ कही गई हैं –

गुप्तवेश्या महावेश्या कुलवेश्या महोदया।
राजवेश्या देववेश्या ब्रह्मवेश्या च सप्तधा।।[४]

अर्थात् गुप्त वेश्या, महावेश्या, कुलवेश्या, महोदया (श्रेष्ठ वेश्या), राजवेश्या, देववेश्या तथा ब्रह्मवेश्या, इस प्रकार वेश्याओं के सात प्रकार बताए गए हैं।

अतः समस्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शास्त्रों में 'वेश्या' का अर्थ कुलटा या गणिका नहीं, अपितु पूर्णाभिषिक्त साधिका है। 'वेश्याद्वारमृत्तिका' का अर्थ उस साधिका के द्वार की मिट्टी है, जिस गृह में पूर्णाभिषिक्त साधक, पूर्णाभिषिक्ता साधिका के साथ वीराचार के अनुसार साधना-भजन एवं चक्रानुष्ठान आदि गूढ़ तन्त्रसाधना सम्पन्न करते हैं, उस गृह के द्वार की मिट्टी ही वास्तविक 'वेश्याद्वारमृत्तिका' है। काली, तारा, त्रिपुरा आदि दशमहाविद्या के मन्दिरों के द्वार की मिट्टी भी 'वेश्याद्वारमृत्तिका' के रूप में ग्रहण की जा सकती है।

अज्ञानवश हम देवी दुर्गा के महास्नान में गणिकाद्वार की मिट्टी का उपयोग करते हैं, किन्तु शास्त्र-प्रमाण से यह स्पष्ट हुआ कि पूर्णाभिषिक्त साधिका के द्वार की मिट्टी ही 'वेश्याद्वारमृत्तिका' के रूप में ग्राह्य है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. निरुत्तर तन्त्र, १४/८ **२.** वही, १४/१६ **३.** वही, १४/९–११ **४.** वही, १४/२

आप मेरे आदर्श हैं

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, की कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

नरेन अस्तबल में भागते हुए गया। 'चन्द्र,' उसने सईस को पुकारा, ''मेरे घोड़े को तैयार करो और सवारी के लिए चलो।'' जल्द ही वह एक खाली सड़क पर गया, उसके बगल में चन्द्र धीरे-धीरे दौड़ रहा था। जैसे ही वे लोग एक बड़े मेले के मैदान को पार कर रहे थे, उन्होंने एक शादी के दल को देखा, दुलहा और दुलहन एक-दूसरे को देखकर लजा रहे थे।

''वे राम और सीता की तरह हैं,'' नरेन हँसा, जोड़े को हाथ दिखाते हुए। सईस ने कहा, ''उनका प्यार दो दिनों में खिड़की से उड़ जाएगा।''

नरेन ने कहा, ''क्या कह रहे हो चन्द्र? राम और सीता जीवन भर एक-दूसरे से प्रेम करते थे।'' सईस ने कहा, ''वे केवल परियों की कहानियाँ हैं, छोटे मालिक ! वास्तव में विवाह एक अभिशाप है।''

''एक अभिशाप !'' नरेन का चेहरा पीला पड़ गया, उसके हृदय पर गहरा आघात लगा।

''हाँ,'' सईस ने जोर से आह भरी। ''जब से मेरी शादी हुई है, मेरी जिन्दगी नरक में बदल गई है। मैंने अपनी सारी आजादी खो दी है। मेरी पत्नी मुझे लगातार सताती है। वह कहती है ... यह करो, वह करो, हमेशा मुझे आदेश देती रहती है। मैं उसका दास बन गया हूँ।'' नरेन की ओर देखते हुए, उसने कहा, ''यदि आप सन्तुष्ट और स्वतन्त्र रहना चाहते हैं, तो कभी शादी न करें, छोटे मालिक।''

जैसे ही नरेन घर पहुँचा, हरि आ गया। वह मुस्करा रहा था। उसने कनकाम्बर के ताजे फूलों को देने के लिए अपने दोनों बँधे हुए हाथों को खोलते हुए कहा – ''देखो, मुझे सीता-राम के लिए क्या मिला है।''

नरेन की आँखों से आँसू छलक पड़ा और उसने जल्दी से मुँह फेर लिया। उसने कहा, ''इसे तुम्हीं उनको चढ़ाओ।'' और अपने कमरे में चला गया।

हरि वापस नरेन की माँ भुवनेश्वरी देवी के पास गया और उसे नरेन के व्यवहार के बारे में बताया। वे सहमत होती हुई बोलीं – ''हाँ, यह तो विचित्र है ! वह अपने सीता-राम की मूर्तियों को सजाने और उनके सामने ध्यान में बैठने का अवसर कभी नहीं चूकता। कभी-कभी उसे उस कमरे से बाहर निकालना कठिन होता है।'' एक पल के बाद उन्होंने कहा, ''मुझे देखने दो कि मैं क्या कर सकती हूँ।''

भुवनेश्वरी देवी ने नरेन को अपने बिस्तर पर लेटे हुए और अपने तकिए के सहारे रोते हुए देखा। उसके सिर को सहलाते हुए उन्होंने पूछा, ''तुम्हें क्या परेशानी है, बेटा?''

नरेन फूट-फूट कर रोते हुए कहा, ''मेरी परेशानी के कारण ये राम और सीता हैं, माँ ! इन्होंने मुझे बहुत दुखित किया है।'' ''लेकिन क्यों?'' भुवनेश्वरी ने पूछा।

''नरेन ने रोते हुए कहा, ''क्योंकि वे विवाहित हैं। चन्द्र कहता हैं कि शादी एक भयानक चीज है ...! मैं क्या करूँ माँ? मैं उनसे प्रेम करता हूँ, लेकिन अब मैं उनकी पूजा

नहीं कर सकता।''

भुवनेश्वरी देवी ने अपने पल्लू के सिरे से उसका चेहरा पोंछा, ''हाँ, यह निश्चित रूप से एक कठिन समस्या है। लेकिन मुझे विश्वास है कि हम इसका समाधान निकाल सकते हैं।''

उन्हें उत्सुकता से देखते हुए, नरेन आशा और निराशा में डोलने लगा। अन्त में भुवनेश्वरी देवी मुस्कुराते हुए बोलीं, ''भगवान वह रूप ग्रहण करते हैं, जो उनके भक्त को सबसे अधिक आकर्षित करता है। इसलिए हमारे पास इतने सारे अलग-अलग देवी-देवता हैं। नरेन, तुम शिव को पसंद करते हो, है न? शिव तपस्वी हैं, उनका स्वभाव संन्यासी जैसा है। राम और सीता के स्थान पर उनकी पूजा क्यों नहीं करते?''

''ऐसा क्या, माँ,'' वह खुशी से अपने पैरों पर उछल पड़ा, उसकी आँखें चमक उठीं, 'आप हमेशा मेरी सभी समस्याओं का समाधान कर देती हैं !''

वह सीढ़ियों से जाते हुए छत के कमरे तक दौड़ा। एक खिड़की से आने वाली हल्की रोशनी में, राम और सीता की छवि चमकती हुई दिखाई दी।

''मुझे क्षमा कीजिए,'' नरेन ने दबी हुई आवाज में कहा, ''माफ कीजिए ... आप जानते हैं कि मेरे मन में क्या है, उसने उन्हें बाहर निकाला और छत की दीवार पर झुककर उसे नीचे सड़क पर गिरा दिया।

उसके सौ टुकड़े हो गए। नरेन की आँखों से आँसू बह रहे थे। उसके बाद वह कमरे में लौट आया।

अगले दिन उसने शिव की एक मूर्ति खरीदी और उसी कोने में छत के कमरे में स्थापित कर दिया।

''अब तुम मेरे आदर्श हो।'' उसने भगवान के सामने अपना सिर झुकाया और अपनी आँखें बन्द करके ध्यान करने लगा।

निखिलभुवनजन्मस्थेमभङ्गप्ररोहाः
अकलितमहिमानः कल्पिता यत्र तस्मिन् ।
सुविमलगगनाभे त्वीशसंस्थेऽप्यनीशे
मम भवतु भवेऽस्मिन् भासुरो भावबन्धः ।।१।।

शिव को नमस्कार !
जिनकी महिमा असीम है,
जो आकाश के समान विमल, स्वच्छ हैं,
जो सारे ब्रह्माण्ड की सृष्टि,
संरक्षण और संहार करते हैं,
उन शिव में हमारी ज्वलन्त भक्ति हो ।
मेरा जीवन शिव से सदा संयुक्त रहे,
जो सर्वेश्वर और सर्वातीत हैं।

– स्वामी विवेकानन्द द्वारा रचित शिव-स्तोत्रम् से

OOO

पृष्ठ ४४६ का शेष भाग

आत्मसाधना का मार्ग बन सकती है।

शारदीय दुर्गा का स्मरण विशेष रूप से जनमानस को उद्‌बुद्ध करता है। विशेषत: उस समाज में जहाँ मातृत्व को सर्वोच्च आदर्श माना जाता है, वहाँ देवी-पूजा सहज ही आध्यात्मिक उन्नति का साधन बन जाती है।

दीर्घकाल तक संसार की आसक्ति के कारण हम अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गए थे, किन्तु वह पूर्णत: नष्ट नहीं हुआ है। श्रीरामकृष्ण के जीवन के प्रभाव से हम पुन: देवी-पूजा के माध्यम से अपने वास्तविक स्वरूप की ओर अग्रसर हो सकते हैं, यही हमारी प्रार्थना है।

शास्त्र कहते है कि यथार्थ पूजा का फल अवश्य प्राप्त होता है। यदि हम इन्द्रिय-निग्रह और एकाग्रता को पूजा का अंग बनाकर अपनी वासनाओं का त्याग करें, तो देवी अवश्य प्रसन्न होंगी। तब समाज में राजा सुरथ के समान भौतिक सिद्धि प्राप्त करने वाले और समाधि वैश्य के समान आत्मज्ञान प्राप्त करने वाले; दोनों प्रकार के महान व्यक्ति उत्पन्न होंगे। समाज की उन्नति के लिए इन दोनों की ही आवश्यकता है। OOO

(इस लेख का अनुलेखन उत्कर्ष चौबे, वाराणसी ने किया है)

अदम्य-साहस-निर्भीकता की प्रतीक : आदिशक्ति माँ दुर्गा

अलका सोनी

दुर्गा-पूजा विशेष

शरद ऋतु के आगमन और वर्षा ऋतु की विदाई का समय होता है – आश्विन मास। इसकी शुरुआत पितृ पक्ष से होती है, जिसमें सभी शुभ कार्य वर्जित रहते हैं। इसके बाद आरम्भ हो जाता है, त्यौहारों का सिलसिला। जिसका आरम्भ होता है, शक्ति स्वरूपा देवी दुर्गा की उपासना को समर्पित नवरात्र से। शरद ऋतु की हल्की शीतलता और सुहानी लगती धूप के बीच आश्विन शुक्ला प्रथमा तिथि को देवी दुर्गा का आह्वान करते हुए कलश की स्थापना की जाती है। कलश की स्थापना के साथ ही नवरात्र की देवी-आराधना आरम्भ हो जाती है।

देवी के अनेक रूप : नवरात्र नौ दिनों तक चलने वाला अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और पावन त्यौहार है। हिन्दुओं के शक्ति सम्प्रदाय में भगवती दुर्गा को त्रिलोक की पराशक्ति और सर्वोच्च देवी माना गया है। वेदों में तो देवी दुर्गा का उल्लेख मिलता है। पुराणों में भी दुर्गा को आदिशक्ति का स्वरूप माना गया है। देवी दुर्गा, भगवान शिव की पत्नी आदिशक्ति का एक स्वरूप हैं। जिन्हें प्रधान प्रकृति, गुणवती माया, बुद्धि तत्त्व की जननी तथा विकार रहित माना गया है। देवी दुर्गा के कई नाम और रूप हैं। हर रूप में वे करुणामयी, कल्याणी और शक्ति स्वरूपा हैं। उनका मुख्य रूप गौरी है, जो कि शान्त, सुन्दर और गौरवर्णा है। साथ ही उनका सबसे भयानक रूप काली का है, जिसे उन्होंने रक्तबीज नामक असुर का वध करते समय धारण किया था। भागवत पुराण के अनुसार माँ दुर्गा का अवतरण जगत् की रक्षा और दुष्टों के दमन के लिए हुआ। इसलिए नवरात्र में नवदुर्गा के मुख्य नौ स्वरूपों का ध्यान, उपासना और आराधना की जाती है।

अलग-अलग रूपों का पूजन : नवरात्र में प्रत्येक दिन शक्ति के अलग-अलग रूपों का पूजन किया जाता है। देवी-दुर्गा को अष्टभुजाओं वाली कहा जाता है। कुछ शास्त्रों में उनके दस भुजा-स्वरूप का भी वर्णन मिलता है। वास्तु शास्त्र में आठ अहम् दिशाएँ होती हैं, लेकिन कई जगहों पर दस कोण या दिशाओं की बात की जाती है। इनमें है प्राची (पूर्व), प्रतीची (पश्चिम), उदीची (उत्तर), अवाची (दक्षिण), ईशान (उत्तर-पूर्व), आग्नेय (दक्षिण-पूर्व), नैऋत्य (दक्षिण पश्चिम),

वायव्य (उत्तर-पश्चिम), ऊर्ध्व (आकाश की ओर), अधरस्त (पाताल की ओर)। हालाँकि आकाश और पाताल की ओर को दिशा का दर्जा नहीं दिया जाता है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ऐसा माना गया है कि देवी दुर्गा हर दिशा से अपने भक्तों की रक्षा करती हैं। यही कारण है कि उनकी आठ भुजाएँ हैं, जो आठों दिशाओं में काम करती हैं।

महिषासुर-मर्दन करके माँ ने सृष्टि-रक्षा की : नवरात्र के समय माँ की जो प्रतिमा स्थापित की जाती है, उसमें उन्हें महिषासुर का वध करते हुए दर्शाया जाता है। पुराणों के अनुसार जब सभी देवता उस पर विजय प्राप्त करने में असफल रहे, तब सबने मिलकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र समेत शक्ति के पुंज से एक देवी का सृजन किया था। जिन्हें दुर्गा का नाम दिया गया। उन्हें हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित किया। उन्होंने सिंह को अपना वाहन बनाया। तब देवी दुर्गा ने उस महिषासुर का मर्दन कर सृष्टि की रक्षा की। तब से उन्हें महिषासुरमर्दिनी भी कहा जाने लगा।

तेजोमय व्यक्तित्व की प्रतीक : नवरात्र के दशवें दिन महिषासुर पर विजय प्राप्त करने के कारण उसे विजयदशमी के रूप में मनाया जाता है। यह हमें बुराई पर अच्छाई की विजय का सन्देश देता है। नवरात्र के दिन हममें शक्ति, बुद्धि, चेतना, साहस और निर्भीकता के दिव्य भाव भरते हैं। साथ ही माँ दुर्गा के आविर्भाव और कृतित्व की कथाएँ नारी के उदात्त स्वरूप को भी दर्शाती हैं। जिन तामसिक शक्तियों का संहार एक पुरुष नहीं कर सकता, उनका संहार एक नारी के हाथों अवश्य होता है। इस तरह माँ दुर्गा नारी के उदात्त शक्तिशाली स्वरूप और तेजोमय व्यक्तित्व की प्रतीक हैं। ○○○

(हरिभूमि २७ दिसम्बर, २०२२ से साभार)

विद्वत्ता के साथ सरल एवं विनम्र बनें

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

महाकवि कालिदास की प्रस्तुत कथा अत्यन्त लोकप्रिय, प्रेरणादायक और शिक्षाप्रद है – यह कथा लोक परम्परा में प्रचलित है, परन्तु इसे 'प्रामाणिक ऐतिहासिक घटना' नहीं,

बल्कि लोककथा या प्रेरक आख्यान के रूप में ही माना जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कोई प्रामाणिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

भारत में मौखिक परम्परा बहुत समृद्ध रही है। भारतीय लोक-कथाओं में कई महापुरुषों – जैसे कालिदास, तेनालीराम, बीरबल के साथ ऐसी प्रेरक किंवदन्तियाँ जोड़ी जाती रही हैं। गुरुकुलों, कथावाचन, सत्संग और परिवारों में नैतिक शिक्षा देने के लिए ऐसी कहानियाँ सुनाई जाती रही हैं।

समय के साथ कालिदास जैसे महान् व्यक्तित्वों के साथ कई प्रेरक लोककथाएँ जोड़ दी गईं, ताकि उनके माध्यम से शिक्षा दी जा सके।

यह कथा लोक और जनमानस में प्रचलित है। यह कथा मूलत: ऐतिहासिक न होकर प्रतीकात्मक और शिक्षाप्रद रूपक है: इसमें 'वृद्धा' (ज्ञान या देवी सरस्वती), 'कालिदास का अहंकार' (अधूरा ज्ञान) और 'संवाद' (आत्मबोध की प्रक्रिया) – को दर्शाया गया है। यानी यह कहानी सत्य घटना से अधिक 'सत्य सन्देश' देने के लिए रची गई है।

महाकवि कालिदास को भारत का शेक्सपियर कहा जाता है, लेकिन एक समय ऐसा था, जब राजा विक्रमादित्य के दरबार में सम्मान पाते-पाते कालिदास के भीतर 'विद्वत्ता का अहंकार' आ गया था। उन्हें लगने लगा था कि संसार में उनसे बड़ा ज्ञानी कोई नहीं है।

एक बार वे किसी दूसरे राज्य की यात्रा पर थे। तपती धूप में चलते-चलते उन्हें बहुत प्यास लग गई। दूर उन्हें एक कुआँ दिखा, जहाँ एक वृद्ध महिला घड़े में पानी भर रही थी।

कालिदास वहाँ पहुँचे और रोबदार आवाज में बोले, 'माते! मैं बहुत प्यासा हूँ, मुझे पानी पिलाओ।'

वृद्ध महिला ने उन्हें ऊपर से नीचे तक देखा और शान्त स्वर में पूछा, 'बेटा, मैं तुम्हें नहीं पहचानती। पहले तुम मुझे यह बताओ कि तुम कौन हो? फिर मैं तुम्हें पानी पिलाऊँगी।'

कालिदास को लगा कि इस अनपढ़ महिला को शास्त्रार्थ क्या समझाना।

उन्होंने सीधे शब्दों में कहा, 'मैं एक 'यात्री' हूँ, मुझे पानी दो।'

वृद्ध महिला मुस्कुराई और बोली – 'झूठ मत बोलो। इस संसार में केवल दो ही यात्री हैं – पहला 'सूर्य' और दूसरा 'चन्द्रमा', जो बिना रुके हमेशा यात्रा करते रहते हैं। तुम इन दोनों में से कौन हो? सच बताओ, तुम कौन हो?'

कालिदास हैरान रह गए। उन्होंने अपना परिचय बदलने की कोशिश की और कहा, 'अच्छा माते, मैं 'सहनशील' हूँ।'

महिला ने फिर सिर हिलाया और कहा, 'फिर झूठ! इस संसार में केवल दो ही सहनशील हैं – पहली 'धरती', जिस पर सब लात मारते हैं, कचरा फेंकते हैं, फिर भी वह अनाज देती है। दूसरा 'वृक्ष', जिसे लोग पत्थर मारते हैं, फिर भी वह मीठे फल देता है। तुम इन दोनों में से कौन हो?'

अब कालिदास का अहंकार डगमगाने लगा। उन्होंने घबराकर कहा, 'तो फिर मैं 'हठी' हूँ।'

बूढ़ी महिला ने हँसते हुए कहा, 'बेटा, हठी भी इस संसार में केवल दो ही हैं – पहले हमारे 'नाखून' और दूसरे हमारे 'बाल'। इन्हें कितना भी काटो, ये जिद करके दोबारा निकल आते हैं। तुम कौन हो?'

अपमान और प्यास से व्याकुल कालिदास अन्तत: उस

महिला के पैरों में गिर पड़े और बोले, 'माते, मैं हार गया। मैं तो बस एक 'मूर्ख' हूँ।'

वृद्धा ने उन्हें उठाया और स्नेह से कहा – 'बेटा! तुम फिर असत्य बोल रहे हो। इस संसार में मूर्ख भी केवल दो ही हैं – पहला वह 'राजा' जो बिना योग्यता के स्वयं को भाग्यशाली समझकर राज करता है और दूसरा वह 'विद्वान्' जो थोड़ा-सा ज्ञान पाकर अहंकार से अंधा हो जाता है और स्वयं को सर्वज्ञ समझने लगता है। तुम कालिदास हो, राजा के दरबारी कवि! लेकिन तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे अहंकार के आगे शून्य हो गया।'

जब कालिदास ने आँखें खोलीं, तो वहाँ साक्षात् माता सरस्वती खड़ी थीं, जिन्होंने उनके अहंकार को तोड़ने के लिए यह रूप धारण किया था।

केन उपनिषद् में वर्णित एक आख्यान कालिदास-कथा के समान ही अहंकार-भंजन और आत्मबोध का गहन सन्देश देता है।

एक बार देवताओं – इन्द्र, अग्नि और वायु – ने असुरों पर विजय प्राप्त की। इस विजय के बाद उनके मन में अहंकार उत्पन्न हो गया कि यह जीत उनकी अपनी शक्ति से हुई है। तभी ब्रह्म ने एक रहस्यमय यक्ष का रूप धारण कर उनके सामने प्रकट होकर उनकी परीक्षा ली। सबसे पहले अग्नि गए। यक्ष ने उनसे एक तिनका जलाने को कहा, पर वे उसे जला नहीं सके।

फिर वायु गए। उन्हें वही तिनका उड़ाने को कहा गया, पर वे उसे हिला भी न सके। दोनों अपनी सीमाएँ समझकर लौट आए। अन्त में इन्द्र वहाँ पहुँचे, पर यक्ष अदृश्य हो गया। तभी वहाँ उमा (पार्वती) प्रकट हुईं और उन्होंने इन्द्र को बताया – 'वह यक्ष स्वयं ब्रह्म था; उसी की शक्ति से तुम्हें विजय मिली थी, न कि तुम्हारी अपनी शक्ति से।

सफलता का श्रेय अकेले स्वयं को देना ही अहंकार है। हमारी उपलब्धियाँ अनेक अदृश्य सहकारकों (परिस्थितियाँ, गुरु, ईश्वर, समाज) का परिणाम होती हैं। अहंकार ज्ञान का अन्त है और विनम्रता ज्ञान का आरम्भ।

यह लोककथा तभी सार्थक बनती है जब इसे जीवन की छोटी-छोटी परिस्थितियों से जोड़ा जाए। नीचे उनसे जुड़ी कुछ सामान्य स्थितियाँ दी जा रही है –

१. जब कोई छात्र अच्छे अंक लाकर स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगता है, तब यह कथा याद दिलाती है कि सीखने की समाप्ति नहीं, बल्कि निरन्तरता महत्त्वपूर्ण है। दूसरों को सिखाएँ, हर विषय में नया सीखने का भाव रखें।

२. पहली सफलता, प्रमोशन या स्किल आने पर प्रायः अहंकार आ जाता है। हर नया अनुभव एक 'वृद्धा' की तरह हमें कुछ सिखाने आता है। किसी के सुझाव को स्वीकार करें, छोटे या बड़े सबसे सीखें।

३. सोशल मीडिया पर कुछ फॉलोअर्स या लाइक्स मिलते ही स्वयं को 'प्रभावशाली' समझना आज सामान्य है। दिखावटी मान्यता वास्तविक ज्ञान नहीं होती। कंटेंट के बजाय चरित्र और विचारों को समृद्ध करें।

४. किसी चर्चा में अपनी बात मनवाने की जिद करना 'मैं ही सही हूँ' का भाव है। संवाद का उद्देश्य जीतना नहीं, समझना होना चाहिए। अत: पहले सुनें, फिर उत्तर दें। युवा बड़ों को 'पुराने विचारों वाला' समझकर अनदेखा करते हैं। परन्तु अनुभव स्वयं एक शिक्षक है। माता-पिता, गुरु या वृद्धों के अनुभव को सम्मान दें।

५. जब असफलता मिलती है, तब अहंकार टूटता है – ठीक कालिदास की तरह। हर हार से एक शिक्षा लें, निराश न हों। जो व्यक्ति जितना ऊँचा उठता है, उसे उतना ही अधिक धरती से जुड़ा, सरल और कृतज्ञ बने रहना चाहिए – यही इस कथा की शाश्वत और व्यावहारिक शिक्षा है।

आज के समय में यह कथा हमें स्मरण कराती है – जितना ज्ञान बढ़े, उतनी ही विनम्रता बढ़नी चाहिए, क्योंकि अहंकार ज्ञान को ढक देता है, जबकि विनम्रता उसे प्रकाशित करती है। जीवन में मिलने वाली हर 'वृद्धा' – अर्थात् हर अनुभव – हमें कुछ सिखाने आई है; जो इसे समझ लेता है, वही वास्तव में ज्ञानी बनता है। मनुष्य चाहे जितना भी सीख ले, उसे सदैव स्वयं को सीखने की प्रक्रिया में ही समझना चाहिए। दूसरों को कमतर आँकना, अपनी उपलब्धियों पर गर्व करना या स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मान लेना, ये सभी आत्मविकास के मार्ग में बाधाएँ हैं। इसके विपरीत, यदि व्यक्ति हर परिस्थिति में सीखने का भाव रखे, दूसरों के अनुभवों का सम्मान करे और अपनी सीमाओं को स्वीकार करे, तो वही सच्चे ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। यह प्रसंग सिखाता है कि 'ज्ञान की माप अहंकार नहीं, बल्कि विनम्रता है।' ○○○

भजन एवं कविता

महिषासुरमर्दिनी-माहात्म्य

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

एक समय देवों-असुरों में, महाघोर संग्राम हुआ ।
महिषासुर बन गया इन्द्र, तब जाकर युद्ध-विराम हुआ ।।

सूर्य-चन्द्र-अग्नि-वरुण-यम, अपने पद से च्युत हुए ।
तजकर देवलोक अति सुन्दर, धरती पर उद्भूत हुए ।।
सारे देवजनों ने मिलकर, त्रिदेवों को याद किया ।
शरणागत होकर देवों ने, निज दुख की फरियाद किया ।।

देव-व्यथा सुन त्रिदेवों के, मुख से दिव्य तेज प्रकटा ।
देव-तेज में मिश्रित हो, एक नारी की छा गयी छटा ।।
देवी के उस दिव्य तेज से, उद्भासित हो गया त्रिलोक ।
देवों ने निज अस्त्र-शस्त्र, अर्पित कर अपना तजा शोक ।।

शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर, देवी ने हुंकार भरा ।
नभमंडल गुंजायमान हो उठा, असुर का प्राण डरा ।।
योद्धाओं को लेकर महिषासुर ने, तब प्रस्थान किया ।
देवी ने अपने संहारक, बाणों का सन्धान किया ।।

बड़े-बड़े असुरों का देवी ने, पल में संहार किया ।
महिषासुर हो क्रुद्ध शस्त्र का, देवी पर प्रहार किया ।।
देवी ने निज पाश फेंककर, महिषासुर को बाँध दिया ।
उसने महिष-रूप को त्यागा, और सिंह का रूप लिया ।।

महाशक्ति माँ दुर्गा ने, जैसे ही उस पर वार किया ।
सिंह-रूप तजकर झट से, मायावी ने नर-रूप लिया ।।
देवी ने निज बाण-खड्ग से, उसके तन को बिद्ध किया ।
देवजनों पर हो दयार्द्र, उनके कार्यों को सिद्ध किया ।।

तब दानव ने गज का लेकर, रूप बड़ा चिग्घाड़ किया ।
माता ने निज खड्ग-वार से, सूंड़ वहीं पर झाड़ दिया ।।
फिर भैंसे का रूप धारकर, करने लगा क्षुब्ध त्रिलोक ।
रणचण्डी ने नेत्र लाल कर, दिया शूल छाती में भोंक ।।

देवी के उस विषम घात से, गया दैत्य जीवन को हार ।
देवों ने तब पुष्प-वृष्टि कर, किया चतुर्दिक् जय-जयकार।।
पुनः स्वर्ग पर देवों ने, पाया अपना खोया अधिकार ।
महिषासुर-मर्दिनी, जगन्माता की महिमा अपरम्पार ।।

महामाया! तेरी माया कौन समझ पाया?

आनन्द कुमार तिवारी 'पौराणिक', महासमुँद,छ.ग.

मोह पाश में जग भरमाया ।
महामाया! तेरी माया कौन समझ पाया?

कोटि कोटि ब्रह्माण्ड, तुम्हारी भ्रू-भंगिमा हास-विलास।
सर्जन, पालन, संहार तुम्हारा श्वास-उच्छ्वास ।।
अस्तित्व तुम्हारा कण-कण में ।
स्पर्श मलय गंध शीतल पवन में ।।
वात्सल्य तुम्हारा जीव-जगत्, चतुर्दिक् समाया ।
महामाया ! तेरी माया कौन समझ पाया?

जब होती कृपा तुम्हारी जननी, कट जाते भव-बन्धन।
मन विशुद्ध, पावन, हो जाता, हट जाता हर आवरण।।
करुण पुकार सुन शिशु की माँ, दौड़ी आती तुम तत्क्षण ।
हृदय लगा लेती ओ माँ देकर चिन्मय दर्शन ।।
सुनकर टेर मेरी अब आओ, मैं चरण-शरण आया ।
महामाया ! तेरी माया कौन समझ पाया?

माँ दुर्गा मैं तव गुण गाऊँ

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

माँ दुर्गा मैं तव गुण गाऊँ, तुम ही मेरी प्राणाधार ।
अभयदायिनी परमेश्वरी तुम, प्रणति करो मेरा स्वीकार ।।
विश्वरूपिणी माँ तुम करती, दुष्टों का अविरल संहार ।
साधुजनों की रक्षा करती, देती उन्हें अम्ब का प्यार ।।
माँ तुम ही वेदों का आश्रय, ब्रह्मशक्ति तुम हो साकार ।
मनवांछित फल की तुम दात्री, मोक्षदायिनी इस संसार ।
महिषासुरमर्दिनी तुम माता, चाहूँ तुमसे यह उपहार ।
अपने चरण शरण में रखकर, कर दो मेरा उद्धार ।।

दुर्गा-पूजा विशेष

त्वं माया रूपिणी दुर्गा

प्रखर श्रीवास्तव

शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय परम्परा में देवी दुर्गा स्त्री-शक्ति की सर्वाधिक समन्वित और विकसित दैवीय अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनका स्वरूप केवल एक पौराणिक चरित्र नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक मानस में निहित शक्ति-तत्त्व का सघन प्रतीक है। देवी दुर्गा के विभिन्न रूपों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय चिन्तन में स्त्री-देवत्व को केवल मातृत्व या करुणा तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे संहार, संरक्षण, राजसत्ता, ज्ञान और ब्रह्मविद्या जैसे विविध आयामों से जोड़ा गया। देवी दुर्गा इसी अवधारणा का एक विकसित परिणाम हैं, जो मात्र जननी ही नहीं, अपितु रक्षिका माता भी हैं। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने दुर्गासूक्त में भगवती दुर्गा को संकट से पार कराने वाली शक्ति के रूप में देखा है –

जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरिता त्यग्निः।।

हम उस जातवेदस् (जिससे वेद प्रकट हुए हैं, सर्वज्ञ दिव्य अग्नि) के लिए सोम को निचोड़ते हैं अर्थात् अत्यन्त श्रद्धा से उनका आह्वान करते हैं। हम उस जातवेदस् का आह्वान करते हैं, जो अपने ज्ञानरूपी अग्नि से भीतर और बाहर की समस्त विपत्तियों को भस्म कर देती है तथा हमें संसार-बन्धन से मुक्त करती है।

यहाँ उनका स्वरूप मार्गदर्शक और रक्षात्मक है। केन उपनिषद् में उमा हैमवती के रूप में वे ब्रह्मज्ञान की अधिष्ठात्री हैं, वह शक्ति जो इन्द्र को ब्रह्म का बोध कराती है। इस स्तर पर देवी दुर्गा का स्वरूप दार्शनिक है, वे युद्ध-देवी के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान-शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

पौराणिक कथाओं और आख्यानों में देवी दुर्गा का स्वरूप अधिक मूर्त और उग्र रूप में विकसित होता है। विशेषत: मार्कण्डेय पुराण के दुर्गा-सप्तशती खण्ड में वे देवताओं की संयुक्त शक्तियों से उत्पन्न आदिशक्ति के रूप में वर्णित हैं। महिषासुर के अत्याचारों से व्याकुल देवताओं के तेज से प्रकट हुई, ये देवी न केवल एक युद्ध-नायिका हैं, बल्कि धर्म-संरक्षण की दैवी शक्ति का प्रतीक भी हैं। महिषासुरमर्दिनी के रूप में देवी बहु-भुजा, आयुधधारिणी और सिंहवाहिनी हैं। उनके प्रत्येक आयुध किसी देवता की शक्ति का प्रतीक है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि देवी दुर्गा स्वयं समस्त देवशक्तियों का समन्वय हैं। यहाँ सिंह केवल उनका वाहन नहीं, बल्कि उनकी संहारात्मक ऊर्जा, वीरता, राजसत्ता और निर्भीकता का मूर्त प्रतीक है। जब दुर्गा देवी सिंह पर आरूढ़ होती हैं, तो यह केवल एक आलंकारिक दृश्य नहीं, बल्कि यह दैवी स्त्रीत्व के उस आयाम को व्यक्त करता है, जो शासन, संरक्षण और दमनकारी शक्तियों के विनाश से जुड़ा है। महिषासुर-वध के दृश्य में सिंह सक्रिय रूप से युद्ध में सहभागी होता है। इस प्रकार सिंह देवी की बाह्य शक्ति नहीं, बल्कि उनकी आन्तरिक उग्रता का दृश्य-विस्तार बन जाता है। यह रूप यह भी संकेत करता है कि मातृत्व और युद्ध-शक्ति परस्पर विरोधी नहीं हैं। देवी दुर्गा करुणामयी माता भी हैं और धर्म-संरक्षिका योद्धा भी। सिंह उनके उग्र रूप का प्रतीक है, किन्तु वह मातृत्व

को नकारता नहीं; बल्कि उसे पूर्ण करता है। इसी प्रकार देवी प्रत्येक कल्प में असुर वध के निमित्त स्वयं को सृजित करती हैं। कालिका पुराण आदि ग्रन्थों में कल्पभेदानुसार देवी के विभिन्न रूपों का सुन्दर वर्णन मिलता है।

अन्य देशों में दुर्गा-तत्त्व के समान्तर स्वरूप – भारतवर्ष में भगवती दुर्गा का स्वरूप अनेक रूपों में अभिव्यक्त है। वे द्विभुजा, चतुर्भुजा अष्टभुजा, दशभुजा, षोडशभुजा व अष्टादश आदि भुजाओं से युक्त हैं। इन विभिन्न स्वरूपों में भगवती दुर्गा महिष रूपी असुर का वध करती हुई दिखाई पड़ती हैं। यदि देवी दुर्गा के सिंह-सम्बद्ध स्वरूप को व्यापक प्राचीन विश्व के तुलनात्मक धार्मिक इतिहास में रखा जाए, तो यह प्रतिमान केवल प्रतीकात्मक समानता नहीं, बल्कि एक गहन सांस्कृतिक संरचना का संकेत देता है, जहाँ स्त्री-दैवत्व को उर्वरता, राजसत्ता, युद्ध और ब्रह्माण्डीय शक्ति के समन्वित रूप में देखा गया। भारतवर्ष के बाहर भी हमें मातृदेवियों का उल्लेख मिलता है, जो देवी दुर्गा से न केवल स्वरूपगत साम्यता रखती हैं, बल्कि वे सभी स्त्री शक्ति की दैवीय अभिव्यक्ति भी हैं।

प्राचीन सुमेर (आधुनिक इराक) की देवी 'इनन्ना' मूलतः उर्वरता, प्रेम और राजसत्ता की देवी थीं, किन्तु उनके चरित्र में युद्ध-तत्त्व अत्यन्त प्रबल था। अक्कादी और बाबिली परम्परा में उनका विकसित रूप इश्तर के रूप में सामने आता है। 'इश्तर' के स्तुति-गीतों और शिलालेखों में उन्हें 'बुद्ध की स्वामिनी' और 'राजाओं की अधिष्ठात्री' कहा गया है। ये विरुद्ध भारतीय परम्परा के 'राजराजेश्वरी' के समान ही हैं। उनकी मूर्तियों और मुहरों पर उन्हें सिंह पर खड़ी या सिंहों के साथ प्रदर्शित किया गया है। यहाँ सिंह केवल आलंकारिक तत्त्व नहीं है, वह सैन्य शक्ति और प्रभुत्व का दृश्य रूपान्तरण है। मेसोपोटामिया में सिंह राजसत्ता और युद्ध-वीर्य का प्रतीक था। जब इश्तार सिंह पर आरूढ़ या उसके साथ संयोजित होती हैं, तो यह संकेत करता है कि वे राजकीय और सैन्य शक्ति की सर्वोच्च अधिष्ठात्री देवी हैं। देवी दुर्गा के समान ये दोनों ही देवियाँ दैत्य या अराजक शक्ति के विनाश के माध्यम से लौकिक व्यवस्था की पुनःस्थापना करती हैं।

प्राचीन मिस्र की 'सेख्मेत' सिंहमुखी देवी थीं, जिन्हें सूर्य-देवता की पुत्री माना गया। देवी सेख्मेत विनाशकारी शक्ति की प्रतिमूर्ति थीं। आख्यानों में उन्हें मानवता को दण्डित करने हेतु भेजा गया बताया गया है और उनके प्रकोप से ही मर्त्यलोक में महामारी फैलती थी। किन्तु यही देवी चिकित्सा और आरोग्य की अधिष्ठात्री भी थीं। यह विनाश और संरक्षण का द्वैत देवी दुर्गा के रूप के तुल्य है। भगवती दुर्गा भी दैत्य-संहार के लिए उग्र रूप धारण करती हैं, किन्तु वही देवी भक्तों के लिए मातृरूपा और कल्याणमयी हैं –

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा,
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।

हे देवी! जब आप प्रसन्न होती हैं, तब समस्त रोगों का नाश कर देती हैं और जब रुष्ट होती हैं, तब सभी मनोवांछित कामनाओं का विनाश कर देती हैं।

सेख्मेत के सिंहमुख का अर्थ है कि देवी स्वयं सिंह-तत्त्व का मूर्त रूप हैं, जैसे भारतीय तान्त्रिक परम्परा में प्रत्यंगिरा। यहाँ सिंह बाह्य वाहन नहीं, बल्कि देवी के स्वभाव का अंग है।

एशिया माइनर (पश्चिमी तुर्की या अंतोलिया) की 'साइबेले' को 'महामाता' के रूप में पूजा जाता था। उन्हें प्रायः सिंहों से घिरे हुए या सिंह-रथ पर आरूढ़ दिखाया गया है। साइबेले का सम्बन्ध पर्वतों, उर्वरता और नगर-रक्षा से था। साइबेले का पर्वत के साथ सम्बन्ध भगवती दुर्गा के हैमवती अथवा पार्वती स्वरूप का ही प्रकाश जान पड़ता है। सिंह यहाँ उनकी सार्वभौमिक सत्ता और प्राकृतिक शक्तियों पर नियन्त्रण का प्रतीक है।

यूनानी परम्परा में 'रिया' भी मातृ-देवी के रूप में प्रतिष्ठित थीं और कला में कभी-कभी सिंह-रथ पर आरूढ़ दिखाई देती हैं। यद्यपि उनमें प्रत्यक्ष युद्ध-तत्त्व देवी दुर्गा की भाँति प्रबल नहीं है, तथापि सिंह-सम्बध उनके प्रभुत्व और शक्ति का संकेत देता है। यहाँ मातृत्व और सिंह का संयोजन यह दर्शाता है कि सृजनात्मक शक्ति स्वयं में राजसत्तात्मक गरिमा धारण करती है।

इसी प्रकार इस्लाम धर्म के उद्भव से पूर्व अरब प्रदेश में देवी 'अल-लात' को सृजन, समृद्धि और युद्ध का प्रतीक माना गया। कुछ मूर्तिकला-प्रमाणों में उन्हें सिंह के साथ प्रदर्शित किया गया है। यह संयोजन संकेत करता है कि देवी केवल उर्वरता की अधिष्ठात्री नहीं, बल्कि शक्ति और

शेष भाग पृष्ठ ४७१ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (६३)

(द्वादश अध्याय १२/११)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पहले इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

प्रत्यागम्य कुटीरं तु तत्र स दृष्टवान् पुनः।
मुषिकस्तस्य कौपीनमकृन्तद् खण्डखण्डशः।।१३१।।

– भिक्षा लेने के बाद कुटिया में वापस आकर उन्होंने देखा कि चूहे ने पुन: उनके कौपीन को टुकड़ा-टुकड़ा काट दिया है।

दृष्ट्वातीव परिक्लिष्टः चिन्तयामास साधकः।
कुतः कस्माच्च कौपीनं याचे पुनर्दिने दिने ।।१३२।।

– साधु उसे देखकर बहुत दुखित हुए। वे सोचने लगे कि अब पुन: कहाँ और किससे प्रतिदिन कौपीन की भिक्षा मागूँगा।

पुनस्तथापि निर्गत्य भैक्ष्यहेतोः परेद्यवि ।
मूषिकोपद्रवस्तेन ज्ञापितो ग्रामवासिने।।१३३।।

– दूसरे दिन वे पुन: भिक्षा हेतु निकले और गाँव वालों से चूहे के उपद्रव की बात बताए।

श्रुत्वा सकल वृत्तान्तं सर्वे ते ग्रामवासिनः।
को नु दास्यति कौपीनं प्रत्यहं भवते चिरम् ।।१३४।।
कुरुतामथ कर्मैकमित्युचुस्ते हि साधकम् ।
एकं पुष्यतु मार्जारमद्यत आश्रमे भवान् ।।१३५।।

– ग्रामवासियों ने सभी बातों को सुनकर कहा – आपको प्रतिदिन कौपीन कौन देगा? अब आप एक काम कीजिए। आज से आप एक बिल्ली आश्रम में पाल लीजिए।

तन्मार्जाराद् भयात्तर्हि मूषिको नागमिष्यति ।
ग्रामात् सोऽचिरमानिन्ये एकं मार्जारशावकम्।।१३६।।

– तो उस बिल्ली के भय से चूहा नहीं आएगा। तब वे साधु तत्काल गाँव से एक बिल्ली का बच्चा लाए।

उपद्रवो निवृत्तोऽभून्मूषिकस्य ततोऽवधिः।
मार्जारभयहेतोर्वै दृष्ट्वेति साधकस्य तु।।१३७।।
सुखस्य ह्यवधिस्तस्य न चैव तर्ह्यवर्तत ।
तं पालयितुमारेभे साधुः क्रमेण यत्नतः।। १३८।।

– उसी दिन से बिल्ली के भय से चूहे का उपद्रव बन्द हो गया। यह देखकर साधु अत्यन्त आनन्दित हो गये। क्रमश: साधु उस बिल्ली का बड़े प्रेम और यत्न से पालन करने लगे।

ग्रामं गत्वा विडालाय दुग्धमानीय भिक्षया।
पाययितुं प्रयत्नेन साधुस्तमुपचक्रमे ।।१३९।।

– साधु गाँव में जाकर बिल्ली के लिए दूध भिक्षा माँग कर उसे बड़े स्नेह पूर्वक पिलाने लगे।

कतिदिनेषु गच्छत्सु कश्चित् पुमानुवाच तम् ।
प्रत्यहं भवतः साधो दुग्धस्यास्ति प्रयोजनम् ।।१४०।।
अन्यसम्पादनं साध्यं कियद्दिनं हि भिक्षया ।
को नु वै भवते दुग्धं संवत्सरं प्रदास्यति ।।१४१।।

– कुछ दिन बाद किसी ने उनसे कहा – "साधु बाबा! आपको प्रतिदिन दूध की आवश्यकता है। दो-चार दिन तो भिक्षा में दूध मिल सकता है, किन्तु बारह मास (वर्षभर) आपको दूध कौन देगा?

कुरुतामथ कर्मैकं पालयतु भवानतः ।
अद्यतो धेनुकामेकां वरं खलु पयस्विनीम् ।।१४२।।
दुग्धं पीत्वा ततस्तस्याः स्वयं तृप्तो भवेद् भवान् ।
अपि पाययितुं शक्यो विडालश्च यथेप्सितं ।।१४३।।

– इसलिए अभी आप एक काम कीजिए। अभी से आप एक दुधारू गाय पाल लीजिए। उससे आप स्वयं उसका दूध पीकर तृप्त होंगे और इच्छानुसार बिल्ली को भी पिला सकेंगे। **(क्रमशः)**

व्रज में श्रीमाँ सारदा

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

(गतांक से आगे)

वृन्दावन के सेठ के मन्दिर की नारायण मूर्ति – एक बार खगेन महाराज ने श्रीमाँ से उनके श्रीधाम वृन्दावन के महत्त्वपूर्ण दर्शनों के बारे में पूछा था, 'ठाकुर ने तो काशीधाम में कितना सब दर्शन पाया था, आपने क्या देखा?' उत्तर में माँ बोलीं, 'रात में मैं बिछौने पर लेटी हुई थी, जाग रही थी। अचानक देखती क्या हूँ कि वृन्दावन के सेठ के मन्दिर की नारायण मूर्ति बाजू में खड़ी है। मूर्ति के गले में जो फूल का हार था, वह पैरों तक झूल रहा था। ठाकुर को इस मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर खड़े देखा। मैं मन ही मन सोचने लगी, 'ठाकुर यहाँ पर कैसे आ गए?' फिर उनसे कहा, 'ठाकुर, वह विश्वास नहीं करना चाहता।' ठाकुर बोले, 'विश्वास करेगा कैसे नहीं, सब सत्य जो है!' (अर्थात् काशी में मरने से मुक्ति होती है यह सत्य है)।

उस नारायण मूर्ति ने मुझसे दो बातें कहीं। एक तो यह थी – 'ईश्वर-तत्त्व को न जानने से क्या किसी को तत्त्वज्ञान हो सकता है?' दूसरी बात मुझे स्मरण नहीं आ रही है।'

खगेन महाराज – ठाकुर नारायण मूर्ति के सामने हाथ जोड़े खड़े क्यों थे?

माँ – उनका तो वैसा ही भाव था। सबके सामने दीनता का।'[५०]

माधवजी का मन्दिर – मन की शुद्धता के सन्दर्भ में श्रीमाँ ने वृन्दावन के माधवजी मंदिर की एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा था, 'जिसका मन शुद्ध है, वह सब शुद्ध ही देखता है। इस गोलाप का (उस समय गोलाप-माँ किसी काम से आयी) मन शुद्ध है। वृन्दावन में माधवजी के मन्दिर में किसी के बच्चे ने टट्टी कर दी थी। सभी 'टट्टी' 'टट्टी' चिल्ला रहे थे, पर किसी ने उसे साफ करने की कोशिश नहीं की। गोलाप ने वह देख तुरन्त अपनी मलमल की नयी धोती फाड़कर टट्टी को उठाकर जगह साफ कर दी। महिलाएँ यह देखकर कहने लगीं, 'जब इसने साफ किया है, तो अवश्य इसी के बच्चे ने मैला किया होगा!' मैं मन ही मन कहने लगी, 'देखो माधव, ये क्या कह रही हैं।' फिर कोई कहने लगा, 'ये लोग साधु हैं, (योगीन स्वामी आदि साथ में थे), इन लोगों की सन्तान कैसे? मन्दिर में विष्ठा पड़ी है, सबको दर्शन की असुविधा हो रही है, यह सोचकर इन लोगों ने साफ कर दिया।' 'इस गंगा के घाट में यदि कहीं मैला पड़ा रहे, तो गोलाप यहाँ-वहाँ से चिथड़ा खोजकर उसे उठा, उस स्थान पर कई हण्डी पानी डाल उसे साफ कर देती है। इससे दस लोगों को सुविधा हो जाती है। लोगों को शान्ति मिलने से गोलाप का भी मंगल होगा। उनकी शान्ति से इसे भी शान्ति मिलेगी। 'बहुत साधना-तपस्या करने से, पूर्वजन्म की बहुत तपस्या होने से तब कहीं इस जन्म में मन शुद्ध होता है।'[५१]

श्रीमाँ का वृन्दावन प्रेम – श्रीमाँ ने अपने द्वितीय प्रवास के समय अपनी माता से एक बार कहा था, ''पिछली बार ब्रज छोड़कर वापस जाने की इच्छा नहीं थी। ऐसा लग रहा था कि मैं आजीवन ब्रज की धूल में ही पड़ी रहूँ।'' अपनी पुत्री की बात सुनकर श्यामासुन्दरी घबरा गईं और बोली, ''वृन्दावन तो अब देख लिया माँ, अब ठीक-ठाक रहते हम वापस चले जाते हैं।''

– ये क्या? यहाँ के सभी स्थान अभी तक नहीं देखे गए हैं। मैं उन सभी लोगों को, जिनसे मेरा परिचय हुआ है, मन्दिर-मन्दिर जाकर देखूँगी, तभी मैं जाऊँगी।[५२]

कृष्ण-नाम माहात्म्य – ऐसा नहीं है कि माँ वृन्दावन में आकर ही भगवान श्रीकृष्ण के मन्दिरों में जाया करती थीं, उनके नाम का माहात्म्य, वृन्दावन की महिमा और उससे सम्बन्धित उदाहरण दिया करती थीं, बल्कि उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं में इनका उदाहरण मिलता है, जिनका उल्लेख हम यहाँ करने जा रहे हैं।

'माँ – विश्वनाथ के दर्शन-स्पर्शन से पाप का नाश होता है, इसीलिए दीर्घजीवी हो जाते हैं। कहते हैं कि वृन्दावन के शंख का जल शरीर में छिड़कने से तथा प्रसाद खाने से व्यक्ति दीर्घजीवी होता है।[५३]

तत्कालीन समाज बहुत सी कुप्रथाओं से ग्रसित था। परन्तु माँ के विचार आध्यात्मिक दिशा देने वाले थे, उन कुरीतियों को दूर करने वाले थे। इसी प्रकार कृष्ण नाम के माहात्म्य और मन में उठने वाले भटकनों को दूर करने वाले उपदेश माँ के मुख से नि:सृत हुये थे। इसके उदाहरण हमें माँ के जीवन में देखने को मिलते हैं। एक बार 'नलिनी दीदी ने भीगे कपड़े में आकर कहा कि कौए ने उनके कपड़े पर पेशाब कर दिया था, इसलिए पुन: स्नान कर आई हैं। माँ ने कहा, 'मैं बूढ़ी हो चली, पर आज तक तो सुना नहीं कि कौआ भी पेशाब करता है। बहुत पाप, महापाप न होने से मन क्या अशुद्ध होता है? अत्यधिक छुआछूत से मन किसी भी प्रकार शुद्ध नहीं होता।... और इसे जितना बढ़ाओ, उतना ही बढ़ता रहेगा।' एक बार और उन्होंने नलिनी दीदी से कहा था, 'मैं तो देश में न जाने कितनी बार सूखा मैला पैरों से दबाकर चली गई, दो बार 'गोविन्द, गोविन्द' कहा, बस सब शुद्ध हो गया। मन से ही सब होता है – मन से शुद्ध और मन से अशुद्ध।''[५४]

माँ श्रीरामकृष्ण देव की मात्र सहधर्मिणी नहीं थीं, अपितु स्वयं जगदम्बा थीं। पर कितने लोग अवतारों को पहचान पाते हैं ! इसी प्रसंग में 'एक दिन प्रसन्न मामा ने श्रीमाँ से कहा, 'दीदी, सुना है कि तुम किसी के लिए स्वप्न में प्रकट हुईं, तुमने उसे मन्त्र दिया और यह भी कह दिया कि उसकी मुक्ति होगी। हम लोगों को तुमने गोदी में रखकर पाला-पोसा, तो क्या हम लोग सदैव ऐसे ही रहेंगे?' श्रीमाँ ने उत्तर में उनसे कहा, 'ठाकुर जो करेंगे, वही होगा। देखो, श्रीकृष्ण ने ग्वाल-बालों के साथ कितना खेल, हास-परिहास किया, घूमे फिरे, उनकी जूठन खाई, किन्तु वे लोग क्या जान पाए थे कि श्रीकृष्ण कौन थे?''[५५]

गोपाल पूजन – अन्यान्य साधकों के जीवन में हम पाते हैं कि साधक किसी विग्रह की नित्य पूजा, सेवा आदि करते हैं और उसके पश्चात् वह विग्रह जैसे जीवन्त हो उठता है, पर माँ के जीवन में इसका व्यतिक्रम पाया जाता है। माँ के जीवन में विग्रह स्वयं जाग्रत होकर माँ से शिकायत भरे शब्दों में पूजा की बात कहते हैं। 'काला बाबू कुंज से कलकत्ता जाने के पूर्व माँ ने एक गोपाल की मूर्ति ली थी। 'वृन्दावन से श्रीमाँ पीतल की बनी हुई एक छोटी बाल-गोपाल की मूर्ति लाई थीं। वह उनके जयरामवाटी के घर में बिना पूजा के पड़ी थी। एक दिन जब श्रीमाँ लेटी थीं, तब उन्होंने देखा कि शिशु गोपाल अपने को घसीटते हुए श्रीमाँ की चारपाई के पास पहुँचकर बोला, 'तुमने मुझे यहाँ लाकर रख दिया, खाने को नहीं देती, पूजा भी नहीं करती। यदि तुम मेरी पूजा नहीं करोगी, तो कोई नहीं करेगा।' श्रीमाँ उसी क्षण गोपाल को बाहर उठा लाईं और अपने हाथ से उसकी ठुड्डी पकड़कर उसे चूमा। बाद में पुष्पांजलि दे, उसे नित्यपूजित श्रीरामकृष्ण के बगल में रख दिया। तब से गोपाल की नित्य पूजा होने लगी।''[५६]

गोपाल का यह कहना कि तुमने मुझे यहाँ लाकर रख दिया, खाने को नहीं देती, पूजा भी नहीं करती। यदि तुम मेरी पूजा नहीं करोगी, तो कोई नहीं करेगा।'' स्पष्ट रूप से यह इंगित करता है कि अवतार और महापुरुषों को लोकशिक्षा के लिये कार्य करना होता है। गीता में श्रीभगवान कहते हैं –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।[५७]

अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो आचरण करता है, दूसरे मनुष्य वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण देता है, दूसरे मनुष्य उसी के अनुसार आचरण करते हैं। कुछ ऐसा ही संकेत हमें माँ के जीवन की इस घटना से मिलता है, जब गोपाल यह कहते हैं कि 'यदि तुम मेरी पूजा न करोगी, तो कोई न करेगा।'

वृन्दावन की घटनाएँ – माँ सदैव गुप्त रूप से ही निवास किया करती थीं। दक्षिणेश्वर में भी कुछ लोग ऐसा कहते थे कि उन्होंने सुना तो है कि वे वहाँ रहती हैं, पर उन्हें कभी देखा नहीं। ऐसी तो न जाने कितनी ही घटनाएँ वृन्दावन में घटी होंगी, पर कुछ ही हमें लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध हैं, जिनमें से एक का उल्लेख कर रहे हैं –

वृन्दावन में अगले अवतार का संकेत – 'माँ - जिस चिन्तन से उसे बेहोशी हुई, वह मानो उसी चिन्तन में डूबा रहा। सभी (ठाकुर के सब शिष्य) उनके (ठाकुर के) पास से आये हैं और उनके पास चले जाएँगे। कोई उनकी भुजा से, कोई पाँव से और कोई रोम से हुए हैं, सभी उनके अंग और अंश हैं।

गौरी माँ उपस्थित थीं। उन्होंने बातचीत के दौरान कहा, 'ठाकुर ने और दो बार आने की बात कही है। एक बार वे बाऊल के वेष में आएँगे। माँ – ठाकुर ने मुझसे कहा था, 'तुम्हारे हाथ में एक हुक्का रहेगा तथा ठाकुर के हाथ में

पत्थर का एक टूटा हुआ बर्तन रहेगा। हो सकता है टूटी कड़ाही में ही भोजन बने। वे जा रहे हैं, तो जा ही रहे हैं – थोड़ी सी भी इधर-उधर दृष्टि नहीं जाती। 'लक्ष्मी ने कहा था, 'बोटी-बोटी काट डालने पर भी मैं अब और नहीं आने की।' इस पर उन्होंने हँसकर कहा, 'मैं अगर आऊँ, तो तुम लोग जाओगी कहाँ? प्राण नहीं टिकेंगे। शैवालों

वृन्दावन

(एक प्रकार की काई) के दल की भाँति एक जगह बैठकर खींचने से ही सब चले आएँगे।'

'वृन्दावन में रेल से उतरी थी। लड़के पहले उतर गये थे। गोलाप गाड़ी से सामान उतरवा रही थी। लाटू का हुक्का पड़ा हुआ था, उसे मेरे हाथ में दिया। लक्ष्मी ने कहा, 'यह तुम्हारा हुक्का पकड़ना हो गया।' मैंने भी कहा, 'ठाकुर, ठाकुर ! यह मेरा हुक्का पकड़ना हो गया!' यह कहकर मैंने उसे जमीन पर गिरा दिया।'[५८]

रेलगाड़ी की घटना – योगेन-माँ अपने संस्मरण में कहती हैं, 'वृन्दावन से माँ के साथ हम सब लोग हरिद्वार गये। योगानन्द महाराज भी हमारे साथ थे। रास्ते में रेलगाड़ी में योगेन महाराज को तेज बुखार हो गया। मैं उन्हें अनार खिला रही थी। माँ ने देखा, मानों मैं ठाकुर को ही खिला रही हूँ। योगेन महाराज ने बुखार की बेहोशी में देखा, एक भयंकर मूर्ति उनके सामने आकर कह रही है, 'तुम्हें देख लेती, लेकिन क्या करूँ, परमहंस देव का आदेश है। मुझे अभी ही चले जाना होगा, मैं एक क्षण भी अब ठहर नहीं सकती।' लाल किनारे की साड़ी पहने एक स्त्री को दिखाकर उसने कहा, 'इस स्त्री को कुछ रसगुल्ले खिला देना।' आश्चर्य की बात है कि इस दर्शन के बाद उनका ज्वर उतर गया। बाद में हरिद्वार से हम लोग जयपुर गये। वहाँ गोविन्दजी का दर्शन कर अन्य दूसरे विग्रहों को देखते-देखते अचानक एक मन्दिर के बगल में एक मूर्ति को देखते ही योगानन्द महाराज कह उठे, 'इसी मूर्ति को रसगुल्ला खिलाने को कहा था, सामने ही रसगुल्ले की एक दुकान भी दिखाई दी। तब आठ आने का रसगुल्ला खरीदकर उस मूर्ति को भोग दिया गया और पूछताछ करने पर पता चला कि वह माँ शीतला की मूर्ति है।''[५९]

वृन्दावन में माँ का स्वास्थ्य – जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं कि ठाकुर की महासमाधि के पश्चात् विरह के कारण माँ के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर भक्तों ने उनकी देह-रक्षा के लिए माँ को वृन्दावन लाने की योजना बनाई थी। 'एक दिन पत्र-पुष्पों से सुसज्जित एक शव को कीर्तन के साथ श्मशान की ओर ले जाते देख श्रीमाँ ने कहा, ठाकुर ! ''देखो, देखो, इस मनुष्य को किस प्रकार वृन्दावन प्राप्त हुआ है! हम तो यहाँ शरीर छोड़ने के लिए आईं, पर एक दिन जरा-सा बुखार भी न हुआ।''[६०]

श्रीरामकृष्ण देव के निर्देशित कार्य को पूर्ण करने के लिए माँ के भौतिक देह का होना आवश्यक था। श्रीमाँ की इस बात से 'हम तो यहाँ शरीर छोड़ने के लिए आईं, पर एक दिन जरा-सा बुखार भी न हुआ' यह अवश्य अनुमान लगाया जा सकता है कि वृन्दावन में श्रीमाँ का स्वास्थ्य अच्छा रहा होगा। हाँलाकि उनके वात का रोग यथावत् बना रहा, यह माँ की इस उक्ति से ज्ञात होता है, 'मेरा शरीर भी ठीक नहीं, बेटी, वात के कारण कष्ट होता है। इसी बीमारी के उपचार के लिए वाराणसी, वृन्दावन गयी, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ।'[६१] वात का रोग होने पर भी श्रीमाँ की मानसिक शक्ति बहुत प्रबल होने के कारण उन्होंने इसे अपनी दिनचर्या की दुर्बलता बनने नहीं दिया था, जिसका उल्लेख उनकी पुष्कर यात्रा में स्पष्ट होता है, ''जयपुर के पश्चात् वे लोग पुष्कर तीर्थ पहुँचे। श्रीमाँ यहाँ सावित्री पहाड़ी पर भी चढ़ीं। पैर में गठिया शुरू हो जाने पर भी वे तब तक काफी चल लेती थीं। इसीलिए वृन्दावन की परिक्रमा करना, चण्डी और सावित्री पहाड़ियों पर चढ़ना तथा पैदल मन्दिर आदि के दर्शन करना, सम्भव हो सका था।''[६२] **(क्रमशः)**

मातृशक्ति की उपासना का उत्सव चेतना-सम्पन्न जीवन से जोड़ता पर्व

डॉ. मोनिका शर्मा

माँ आदिशक्ति की उपासना का पर्व नवरात्र केवल उल्लास ही नहीं, आत्मशक्ति के जागरण का पर्व भी है। नवरात्र के नौ दिन आत्मनिरीक्षण करने, अपने मन के भीतर झाँकने का अवसर बनकर आते हैं। परम्परागत रंग-ढंग से लेकर आध्यात्मिक जीवनशैली तक, मन-मस्तिष्क की ऊर्जा को सार्थक दिशा में मोड़ने का संदेशदायक यह उत्सव नारी-शक्ति की सार्वजनिक स्वीकार्यता के पर्व के रूप में मनाया जाता है। घर हो या पूजा-पंडाल, हर कोई माँ दुर्गा के रूप में मातृशक्ति को नमन करता है। शक्ति की उपासना का यह अवसर सृजन-पोषण देने वाली हर विभूति के सम्मान की सीख भी देता है। इसलिए नवरात्रि नारी और प्रकृति की सृजन-शक्ति के समक्ष सिर झुकाने, उसका मान करने के भाव को भी पोषित करता है। पावन मानवीय भाव-चाव को सींचनेवाले पूजन और परम्परा के ये नौ दिन हर बार मन को नया विश्वास देकर जाते हैं।

विनम्रता के भाव को बल : नवरात्र में अपनी समस्त ऊर्जा का समर्पण कर माँ शक्ति से यह आह्वान किया जाता है कि वे नई शक्ति और नई सोच का संचार करें। इस भाव से आदिशक्ति के समक्ष नत होना, ईश्वरीय सत्ता के आगे ही नहीं, मानवीय जीवन में भी विनम्र होने के भाव को पोषित करता है यह पर्व। माँ दुर्गा का रूप भारतीय नारी के असहाय नहीं, बल्कि मातृशक्ति के रूप में पोषक और चेतनामयी रूप में सजगता से दमकते चेहरे का प्रतीक है। तभी तो इस महापर्व पर आस्था और विश्वास के माध्यम से हमें अपनी ही असीम शक्तियों से परिचय पाने का मार्ग मिलता है।

मानसिक ऊर्जा-संचय का अवसर : तनाव, अवसाद और अकेलेपन की जीवनशैली के इस दौर में हर किसी के लिए अपने मन को साधना अनिवार्य है। परिवर्तित पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियों में अपनी आन्तरिक शक्ति का संचय आवश्यक है। इन नौ दिनों में मन की ऊर्जा जुटाई जा सकती है। व्रत-उपवास के द्वारा संयमित जीवनशैली मन का मौसम बदल देती है। माना जाता है कि माँ दुर्गा की आराधना के इन दिनों में उपवास करने वालों को ही नहीं, उपवास न करने वालों की दिनचर्या भी सधी और सात्त्विक हो जाती है। इसीलिए यह अवसर हर किसी के लिए मानसिक ऊर्जा को सहेजने के संकल्प को पूरा करने का परिवेश बनाता है। इससे नए विचारों के साथ जीवन की सार्थक दिशा खोजते हुए अपनी भीतरी ऊर्जा को व्यर्थ न गँवाने की समझ को बल मिलता है। जीवन की आपाधापी में, कितनी ही गतिविधियों में, निरर्थक संवाद और अजब-गजब व्यवहार में जाने-अनजाने हमारी ऊर्जा नष्ट होती है। इसीलिए नवरात्र में मन की शक्ति को दिशा देना जीवन में बड़ा परिवर्तन ला सकता है। समझना कठिन नहीं कि चेतनामय मन, जीवन के हर अन्तर्द्वन्द्व में हमारी जीत सुनिश्चित करता है।

नई चेतना नवजागरण का प्रतिबिम्ब : भारतीय संस्कृति में मातृशक्ति को ही प्राणशक्ति माना गया है। ऐसे में महादेवी की आराधना का यह उत्सव नवचेतना और नवजागरण का पर्व तो है ही, स्त्री-सम्मान के भाव से भी जुड़ा है। यों भी हमारे यहाँ नारी की प्रखरता और शक्ति-सामर्थ्य को ही 'दुर्गा' नाम दिया गया है। इसीलिए आज के दौर में यह पर्व महिलाओं के मन-जीवन में झलकती नई चेतना को भी

शेष भाग पृष्ठ ४७५ पर

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो दीदी हेमांगिनी को काशी, मोक्षप्राप्ति वर-दान करैं ।
जो निवेदिता के विद्यालय को, आशीर्वचन प्रदान करैं ।
जो धर्मसनातन के गौरव का, देश-विदेश प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२१।।

जो श्रीरामेन्द्र को विद्वत्ता का, आशीर्वचन प्रदान करैं ।
जो पिता-संग गंगा-स्नान को, दक्षिणेश्वर प्रस्थान करैं ।
जो प्रमदा दास मित्र से शास्त्र-अध्ययन-पत्राचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२२।।

जो मथुरनाथ को भाव समाधि का, अनुभव दिव्य प्रदान करैं ।
जो लज्जाशीला जग प्रपंच के, कर्म विगत अभिमान करैं ।
जो राष्ट्रोन्नति के चिन्तन में ही, अर्पित निखिलाचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२३।।

जो भक्त-हृदय-बैठकघर में, रहने का वचन प्रदान करैं ।
जो सहज स्नेह-छाया-आश्रय से, सबको अभय प्रदान करैं ।
जो युवा-चरित्र-गठन का ही, आह्वान विशेष प्रकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२४।।

जो हृदयराम को ज्योतिर्मय, दर्शन से धन्य अपार करैं ।
जो दुर्वचनों के लिये हृदय को, क्षमा विशेष प्रकार करैं ।
जो अलवर में निर्धन वृद्धा के, घर रोटी-आहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२५।।

जो मथुरनाथ को शिव-काली, दर्शन प्रत्यक्ष प्रदान करैं ।
जो बाल्यकाल में ही गिरीश को, स्वप्न में दर्शन-दान करैं ।
जो काशी में भास्करानन्द से, मिलन विशेष प्रकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२६।।

जो तर्क-परीक्षण हेतु शिष्य को, प्रोत्साहित बहुबार करैं ।
जो ठाकुर के सब शिष्यों के प्रति, अनुपम प्रेम-दुलार करैं ।
जो आजीवन निज मातृभूमि का, शुभ गुणगान अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२७।।

जो कर्म-वचन-मन सत्यव्रती हो, धार्मिक निष्ठाचार करैं ।
जो त्यागी पति के त्यागभाव, का ही सुमधुर गुंजार करैं ।।
जो एकाग्रता-आत्मसंयम का, सेवा-धर्म प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२८।।

जो श्रीनरेन्द्र को निज समाधि के, स्वार्थ हेतु फटकार करैं ।
जो परिव्राजक नरेन्द्र को, आशीर्वाद विशेष प्रकार करैं ।।
जो धर्मसनातन कीर्ति ध्वजा को, उन्नत अपरम्पार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१२९।।

जो साधु जटाधारी के, रामलला के संग विहार करैं ।
जो बंगला भाषा में रामायण-चरित-पठन साभार करैं ।।
जो निज वचनों-संदेशों से, जन-गण-मन-हृदय-विहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१३०।।

जो पितृवियोगी श्री नरेन्द्र की, दरिद्रता का नाश करैं।
जो आश्रित संतानों का भव-भय, और अमंगल-नाश करैं ।
जो मातृभूमि-उन्नति-व्रत लेकर, कर्मठता-संचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१३१।।

जो अधर सेन के घर को, भक्त-मिलन-अड्डा स्वीकार करैं ।
जो भक्तों को आश्रय देकर, आलोकित बागबाजार करैं ।
जो नगर शिकागो धर्मसभा को, सार्थक धन्य अपार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१३२।।

जो अधर सेन को अश्व-सवारी, के प्रति सजग अपार करैं ।
जो भक्त साधकों-सन्तानों को, निर्भय सभी प्रकार करैं ।।
जो ध्यान समाधि के दुर्लभ सुख को, छोड़ जगत्-उपकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१३३।।

जो श्री बलराम भक्त को अपना, रसददार स्वीकार करैं ।
जो श्री राखाल घोष-पत्नी को, पुत्र-वधू स्वीकार करैं ।
जो अतुल आत्मबल जाग्रत कर, परिव्राजक-वेश विहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।१३४।।

बस्तर का दशहरा और रानी प्रफुल्ल कुमारी देवी

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो ! आज हम छत्तीसगढ़ के विश्व प्रसिद्ध दशहरा के बारे में जानेंगे, जो पूरे ७५ दिनों तक चलता है। यह दशहरा भगवान राम की रावण पर विजय के लिए नहीं मनाया जाता है। यहाँ का दशहरा बस्तर की कुल देवी माँ दन्तेश्वरी को समर्पित है। १५वीं शताब्दी में काकती वंश के राजा पुरुषोत्तम देव ने यह परम्परा आरम्भ की। वे जगन्नाथपुरी की यात्रा पर गये थे। जब वे वहाँ से वापस आ रहे थे, तब १६ पहियों वाला रथ उन्हें उपहार में मिला। रथ के ४ पहिये भगवान जगन्नाथ को और बचे हुए १२ पहिये माँ दन्तेश्वरी को उन्होंने समर्पित किया। इसका प्रारम्भ पहले दिन पाट जात्रा से होता है। इसमें साल वृक्ष की बड़ी-सी लकड़ी की पूजा होती है। इसी लकड़ी से उत्सव के लिए भव्य रथ का निर्माण किया जाता है। अन्य प्रथाओं में ९वें दिन मावली परगाँव अन्तिम महत्त्वपूर्ण प्रथा है। इसमें दंतेवाड़ा से माता मावली जगदलपुर दशहरा में सम्मिलित होने आती हैं। इसी प्रकार, इसका प्रारम्भ सावन अमावस्या के पहले दिन पाट जात्रा तथा समापन आश्विन माह की त्रयोदशी के ७५वें दिन होता है। बच्चो ! देवी में ब्रह्माण्ड की अपार शक्ति समाहित है तथा यह शक्ति प्रत्येक नारी में समाहित है।

इसी का उदाहरण छत्तीसगढ़ के इतिहास के पन्नों में छिपा है। जो अंगेजों के सामने नहीं झुकी, जो कभी राजगद्दी नहीं माँगी, उसे बस्तर के साधारण लोगों ने महारानी बना दिया। अब प्रश्न उठता होगा कि ऐसी महान महिला कौन थी? बच्चो, वह महिला थी छत्तीसगढ़ की पहली महिला शासिका प्रफुल्ल कुमारी। वे ११ वर्ष की आयु में राजगद्दी पर बैठीं। वे काकतीवंश की रानी थीं। बस्तर में १३२४ से १९४७ तक काकती चालुक्य वंश का शासन रहा। इसमें २० शासकों ने नेतृत्व किया। १९वीं पीढ़ी में आईं प्रफुल्ल कुमारी देवी। ये राजा रुद्र प्रतापदेव और रानी कुसुमलता की बेटी थीं। इनका जन्म १९१० ई. में हुआ। जन्म के दो वर्ष बाद इनकी माँ और भाई का देहान्त हो गया। इनका लालन-पालन सौतेली माँ चन्दकुमारी देवी ने किया। अंग्रेज शिक्षिकाओं ने इन्हें शिक्षा दी। किन्तु भारतीय संस्कार इनमें गहराई तक रचे-बसे थे। १९२१ में पिता राजा रुद्र प्रताप देव की असामयिक मृत्यु हो गई, इसके बाद राजगद्दी पर कौन बैठेगा? सभी सोच में पड़ गए। क्योंकि अभी तक राजसिंहासन पर केवल पुरुषों ने ही राज किया था। उस समय भारतवर्ष में अंग्रेजों का शासन था। क्या एक महिला शासिका को राजगद्दी दी जा सकती है? यह प्रश्न अंग्रेजों से पूछना आवश्यक था, पर वहाँ की हजारों आदिवासी जनता महल के सामने एकत्रित हुई और बिना अंग्रेजों की सहमति के प्रफुल्ल को रानी बनाने का निर्णय किया। नहीं तो, वे लोग अपने मृत राजा का अन्तिम संस्कार नहीं होने दे रहे थे। १९२२ में अंग्रेजों ने भी इस निर्णय को मान्यता दी। १९२७ में इनका विवाह मयूरभंज के राजकुमार प्रफुल्लचन्द्र भंजदेव से हुआ। इतिहास में पहली बार बस्तर को एक महिला के नेतृत्व में दिया गया। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए महारानी कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय गईं और एंथ्रोपोलोजी (मानवविज्ञान) में स्नातकोत्तर किया। वहाँ से वापस आने के बाद इन्होंने बालिका शिक्षा, चिकित्सा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में कार्य किया।

१९३५ में रानी प्रफुल्ल ने महारानी अस्पताल की नींव रखी, जो आज भी बस्तर का प्रमुख अस्पताल है। इन्होंने आदिवासियों के अधिकार के लिए कई काम किये। ये अपनी आदिवासी प्रजा को बहुत प्रेम करती थीं। वहाँ के आदिवासी इन्हें बाबी धानी यानी ममतामयी रानी कहते हैं। जमशेदजी टाटा और अंग्रेज बस्तर के बैलाडिला क्षेत्र के अपार खनिज का खनन कर व्यापार करना चाहते थे। परन्तु रानी प्रफुल्ल देवी ने ऐसा होने नहीं दिया। इससे क्रोधित होकर राजा और रानी को मिलने वाले राजशाही भत्ते में अंग्रेजों द्वारा कटौती कर दी गई। पर वे अंग्रेजों के सामने झुकी नहीं। १९३६ में रानी को अपेंडिसाइटिस की बीमारी हो गई। डॉक्टरों ने अच्छी चिकित्सा के लिए इन्हें लंदन जाने का परामर्श दिया। वहाँ चिकित्सा के दौरान डॉक्टरों को चिट्ठी भेजी गई कि रानी स्वस्थ होकर पुनः वापस नहीं आनी चाहिए। उसके बाद वे वहाँ से वापस जीवित नहीं आ सकीं। आज तक यह रहस्य है कि वह चिट्ठी किसने लिखी होगी। उनकी मृत्यु के बाद उनके बेटे प्रवीरचन्द्र भंजदेव बस्तर के महाराजा बने और वहाँ का कार्यभार सम्हाला।

बच्चो ! अगर एक ११ साल की बच्ची एक राज्य का राज्य-भार सँभाल सकती है, तो प्रत्येक व्यक्ति में बड़े कार्य करने की क्षमता है। आवश्यकता है साहसिक निर्णय, लगन, परिश्रम और सत्यनिष्ठा की। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

पन्द्रहवाँ अध्याय (१६/१)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १६वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

अत: इस महत्त्वपूर्ण सोलहवें अध्याय में भगवान कहते हैं –

श्रीभगवान उवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।१।।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।२।।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।३।।

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) अभयम् सत्त्वसंशुद्धिः ज्ञानयोगव्यवस्थितिः (अभय, अन्त:करण की निर्मलता, ज्ञानयोग में दृढ़ स्थिति) च दानम् दमः यज्ञः स्वाध्यायः (और सात्त्विक दान, दम, यज्ञ का आचरण, वेदों का पठन) तपः च आर्जवम् (स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहना और मन की सरलता) अहिंसा सत्यम् अक्रोधः त्यागः

शान्तिः (अहिंसा, यथार्थ प्रिय भाषण, क्रोध का अभाव, त्याग, चित्त की चंचलता का अभाव) अपैशुनम् भूतेषु दया (निन्दा न करना, सभी के लिए दया) अलोलुप्त्वम् मार्दवम् ह्रीः अचापलम् (इन्द्रिय-विषयों में आसक्ति का अभाव, कोमलता, शास्त्रविरुद्ध आचरण में लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव) तेजः क्षमा धृतिः शौचम् अद्रोहः नातिमानिता (तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धि, शत्रुभाव का अभाव, विनम्रता) भारत दैवीम् सम्पदाम् अभिजातस्य भवन्ति (हे अर्जुन! दैवी सम्पदा लेकर उत्पन्न हुए पुरुषों के लक्षण हैं)।

"अभय, अन्त:करण की निर्मलता, ज्ञानयोग में दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, दम, यज्ञ का आचरण, वेदों का पठन, स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहना और मन की सरलता।"

"अहिंसा, यथार्थ प्रिय भाषण, क्रोध का अभाव, त्याग, चित्त की चंचलता का अभाव, निन्दा न करना, सभी के लिए दया, इन्द्रिय-विषयों में आसक्ति का अभाव, कोमलता, शास्त्रविरुद्ध आचरण में लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव।"

'तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्धि, शत्रुभाव का अभाव, विनम्रता, हे अर्जुन! दैवी सम्पदा लेकर उत्पन्न हुए पुरुषों के लक्षण हैं।'

दैवी सम्पत्तियाँ जन्मगत

सोलहवें अध्याय के प्रथम तीन श्लोकों में दैवी सम्पत्ति की बात कही गई है और बताया गया है कि अच्छे संस्कारों को लेकर जो व्यक्ति पैदा हुआ है, उसमें ही दैवी सम्पदाएँ पाई जाती हैं। इसका एक तात्पर्य तो यह है कि माता-पिता के पास जब तक ये संस्कार नहीं होंगे, तब तक उनकी सन्तान भी उन संस्कारों को नहीं पा सकेगी। माता-पिता में विद्यमान रहने पर उनकी सन्तान जन्म से ही उन संस्कारों को लेकर आ सकती है और धीरे-धीरे उनका वर्धन कर सकती है। जन्म से जो आसुरी संस्कार लेकर आता है, उसके लिए भगवान कहते हैं कि यदि वह पुरुषार्थ करे, तो अपने भीतर उन गुणों को ला सकता है, पर जन्म से जो संस्कार नहीं मिले, उनका अर्जन कराना जरा कठिन है। इसीलिए मानो अर्जुन को आश्वासन देते हुए कहते हैं – तुझे चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। तू तो अच्छे संस्कारों को

लेकर पैदा हुआ है। अपने भीतर टटोलकर अर्जुन पाता है कि भगवान जिन्हें दैवी सम्पत्ति की संज्ञा देते हैं, उनमें से तो कोई भी गुण उसमें नहीं है। तब क्या वह भगवान की कृपा का पात्र नहीं बन सकता? इसीलिए वह आश्वासन भगवान ने उसे दिया।

सबसे पहले बताया – अभय, जैसे कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ आमने-सामने खड़ी रहती हैं, वैसे ही मनुष्य के जीवन में भी एक देवताओं की सेना और एक असुरों की सेना सतत खड़ी रहती है। उनके युद्ध का हम स्वयं अवलोकन करते हैं। कभी देवताओं को बढ़ावा देते हैं और कभी असुरों को बढ़ावा देते हैं। कभी देवता विजयी होते हैं और कभी असुर ! यह सतत संग्राम हमारे मन के भीतर चलता रहता है। भगवान हमें यही बताना चाहेंगे कि किस प्रकार दैवी सम्पत्ति को बढ़ावा दिया जा सकता है और कैसे आसुरी सेना को निस्तेज-परास्त किया जा सकता है। वेदों में भी मिलता है कि देवताओं के पक्षधर इन्द्र और असुरों के अधिष्ठाता वृत्रासुर में सदा लड़ाई ठनी रहती है। रामायण में युद्ध था राम और रावण के बीच। बताया गया कि शरणागत होना चाहिए राम के। तात्पर्य यह कि राम की जो प्रकृति है, स्वभाव है, उनके जो गुण हैं, उनकी शरण में हम चले जाएँ। उन गुणों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें और रावण जिन गुणों से युक्त था, उन गुणों से दूर रहें। सभी सद्ग्रन्थों का केन्द्रीय कथ्य यही रहता है कि आसुर गुण हमारे भीतर प्रवेश न करने पाएँ।

अभय और नातिमानिता सभी २६ गुणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण

यहाँ पर यह कहा गया है कि दैवी सम्पत्ति के सेनापति हैं अभय, जो द्वार पर खड़े हैं। अन्त में कहा नातिमानिता। किसी वस्तु या व्यक्ति पर हमें जब क्रोध आता है, तो हमारे भीतर मान प्रवेश कर जाता है और यही मान चरमावस्था पर पहुँच जाता है, तब बहुत बड़ा दुर्गुण बन जाता है। मान में नम्रता नहीं रहती। मान को प्रेम से जीता जा सकता है। रस की वृद्धि के लिए उसे स्वीकार कर लिया जाता है। जैसा कि श्रीमद्भागवत में प्रसंग आता है कि गोपियों का मान देखकर भगवान कृष्ण अन्तर्धान तो होते हैं, पर प्रेमवश उन्हें मनाने से पुन: प्रकट भी हो जाते हैं। उसी मान की यदि अति हो जाए, जैसे कि कैकेयी ने की, तो वह दुर्गुण कहलाएगा। नातिमानिता का अर्थ हुआ विनम्रता।

यहाँ भगवान ने कुल २६ गुण गिनाएँ हैं। कहते हैं कि सामने तो अभय जैसे बलिष्ठ सैनिक को तैनात कर लिया, पर शत्रु कहीं पीछे से आक्रमण न कर दे, इसलिए वहाँ भी कम बलवान सैनिक रखना उचित नहीं। शत्रु देवता के छद्मवेष में आकर हमारे मन में घुस सकता है, इसीलिए आवश्यकता है वहाँ नातिमानिता जैसे प्रबल सैनिक की। आगे बढ़ने के लिए निर्भीकता की आवश्यकता है और अपना बचाव करने के लिए नम्रता भी चाहिए। ये दोनों गुण मिलकर मनुष्य की रक्षा करते हैं। मनुष्य में सभी गुण रहते हुए भी यदि अहंकार आ जाए, चाहे वह निर्भीकता का ही अहंकार क्यों न हो, तो मानो दुर्ग का वह पीछे का दरवाजा दुर्बल हो जाता है। शत्रु को प्रवेश करने के लिए स्थान मिल जाता है। देवर्षि नारद के मन में काम पर विजय पाकर एक ही अहंकार तो आया था न ! जिसके कारण उन्हें इतनी यातना झेलनी पड़ी। अतिमानिता जीवन में आ गई, तो कामजयी होने का जो दम भरते थे, उसी काम ने उन्हें नचा डाला। भगवान कहते हैं – साधक के जीवन में प्रथम दैवी सम्पत्ति निर्भीकता सबसे पहले आनी चाहिए। किसी भी कार्य में लौकिक हो या आध्यात्मिक, हम यदि निर्भीक न रहें, संशय करने लगें, तो वह कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता। संशय से ऊपर उठकर जो बिलकुल नि:संशय होता है, काम उसी के द्वारा होता है। संशय के उत्पन्न होते ही मन डाँवाडोल होने लगता है और जहाँ सब डाँवाडोल हुआ कि स्थिति अदृश्य हो गई और जहाँ स्थिति अदृश्य हो गई, तो फिर वह व्यक्ति कुछ भी करने में समर्थ नहीं रहता। इसीलिए कहा कि निर्भीकता को लेकर चलो। वही जीवन में सब समय तुम्हारी रक्षा करेगी। जो निर्भीक रहता है, वह तत्त्व को पा भी लेता है। संशय प्रत्येक क्षेत्र में सबसे बड़ी बाधा है। उपनिषद् में तो यहाँ तक कह दिया – **नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।** उन्होंने बहुत अद्भुत बात कह दी कि बलहीन तो आत्मा की प्राप्ति कर ही नहीं सकता। अर्थात् केवल संसार के ही लिए नहीं, परमार्थ के लिए भी बल की अपेक्षा है।

अन्य २४ दैवी गुण

सत्त्वसंशुद्धि – अर्थात् हमारा चित्त शुद्ध हो। उसमें किसी प्रकार का कपट न हो। अर्थात् कथनी और करनी में

भेद न हो। यह दैवी सम्पत्ति का दूसरा गुण है। कथनी और करनी में अन्तर रहने से हम भीतर से स्वयं ही खोखले हो जाते हैं। उस अन्तर को अपने में से निकाल देना ही अन्त:करण की शुद्धि है। व्यवहार में सुशृंखल रहें। जो हम कहते हों, वही करते हों। जो न कर सकते हों, उसके लिए स्पष्टत: अपनी असमर्थता को स्वीकार कर लें। इस प्रकार का निष्कपट व्यवहार अध्यात्म पथ के पथिक के लिए अनिवार्य है। इन २६ गुणों की सेना तो हम-सबके पास है। कभी-कभी हम देखते हैं कि जब हमारे प्राण पर बन आती है, तब हम पूर्णतया निर्भीक हो जाते हैं और डटकर परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ये गुण तो हमारे पास हैं, पर इनका परिष्करण करना है, इनका विकास करना है, इनको पुष्ट करना है। उसी प्रकार जितने भी आसुरी सम्पद के गुण हमारे भीतर हैं, उनको क्षीण करना है। बस यही तो साधना है ! जीवन में किसी न किसी के समक्ष तो हम निष्कपट रहते ही हैं। यदि सदा कपट का ही व्यवहार हमें करते रहना पड़े, तो विक्षिप्त ही हो जाएँ। मनुष्य किसी न किसी के पास तो अपने मन को खोल ही देता है, हृदय को हल्का कर ही लेता है। निष्कपटता के साथ अपने इसी व्यवहार का हम विकास करें, तो सत्त्वसंशुद्धि हो जाएगी।

(क्रमशः)

कविता

मेरी माँ तू ...

डॉ. निधि श्रीवास्तव

माँ ....मेरी माँ !!
तुम तरलता हो वाणी की
तुम स्निग्धता हो कर्मों की
तुम लय हो ताल-छन्द की
तुम करुणा हो रीते मन की
तुम बोध हो सौन्दर्य की
तुम रचयिता हो स्पन्दन की
तुम कल्याणी हो नीरस कलरव की
तुम अभया हो भीतग्रस्त तन-मन की
तुम शीतल स्पर्श हो ममता की
माँ तुम आँचल हो पावनी धरा की
माँ ... मेरी माँ !
तुम्हीं तो प्रारम्भिका हो
हर अणु-प्राण-अस्तित्व की ।

पृष्ठ ४६१ का शेष भाग

संरक्षण की भी प्रतीक थीं। एक प्राचीन प्रतिमा में अल-लात देवी को दो अन्य देवियों अल-उझा और मनात के साथ प्रदर्शित किया गया है, जो क्रमशः सृजन, पालन और संहार की प्रतीक हैं। यह स्वरूप दुर्गा प्रतिमा के साथ दोनों पार्श्व में पूजित देवी लक्ष्मी और सरस्वती के ही समान है।

कुषाण कालीन बैक्ट्रिया में 'नना' अत्यन्त लोकप्रिय देवी थीं। वे मूलत: भारतीय परम्परा से ही सम्बन्धित थीं, किन्तु मध्य एशिया में उनका स्वरूप स्थानीय तत्त्वों के साथ विकसित हुआ। कुषाणकालीन सिक्कों और मूर्तियों में उन्हें सिंह पर आसीन दिखाया गया है। यहाँ सिंह स्पष्टत: राजसत्ता और साम्राज्यिक शक्ति का द्योतक है। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कुषाण साम्राज्य भारत, मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया के सांस्कृतिक सम्पर्क का केन्द्र था। इस सन्दर्भ में नना और देवी दुर्गा के सिंह-सम्बद्ध रूपों में समानता केवल संयोग नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अन्त:सम्वाद का परिणाम भी हो सकती है। भारतीय परम्परा में दुर्गा का सिंहवाहिनी रूप इन समस्त तत्त्वों का सर्वाधिक विकसित और दार्शनिक समन्वय है। यहाँ सिंह केवल शक्ति का प्रतीक नहीं, बल्कि धर्म-संरक्षण की सक्रिय ऊर्जा है। भगवती दुर्गा के माध्यम से मातृ-देवी का यह वैश्विक प्रतिमान एक पूर्ण, सुसंगठित और दार्शनिक अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि सिंह-सम्बद्ध मातृ-देवी का स्वरूप प्राचीन विश्व की साझा सांस्कृतिक चेतना का द्योतक है और देवी दुर्गा उस चेतना की भारतीय परम्परा में सर्वोच्च अभिव्यक्ति हैं। ○○○

दुर्गा-पूजा विशेष

वाराही तन्त्र में दुर्गापूजा का वर्णन

डॉ. अरूपम सान्याल, शोध-योजना सदस्य, टीका लेखन परियोजना, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

दुर्गा-पूजा समग्र भारतवर्ष में अन्यतम बृहत् पर्व है। दुर्गा-पूजा के अवसर पर पूरे भारत के मन्दिरों में देवी की आराधना की जाती है। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में दुर्गा पूजा नौ दिन का पर्व है, ऐसा प्रतीत होता हैं। परन्तु शास्त्रों में इस महापर्व का विविध रूप देखा जाता है। देश भर में इस पर्व के मनाने का ढंग भी भिन्न होता है। भारत के उत्तर, पश्चिम और दक्षिण क्षेत्रों में यद्यपि नौ दिनों तक दुर्गा-पूजा होती है, परन्तु पूर्वी क्षेत्रों में नौ दिन, पाँच दिन, तीन दिन या पन्द्रह दिन तक भी दुर्गा-पूजा होते देखी जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि दुर्गा-पूजा की विविध पद्धतियाँ

शास्त्रों में उपलब्ध होती हैं। मुख्यत: दुर्गा-पूजा के लिए पूर्वी क्षेत्रों में दुर्गाभक्ति तरङ्गिणी की पद्धति अनुसरण की जाती है। इसके अतिरिक्त दुर्गा-पूजा के लिए अन्य पद्धतियों का भी अनुसरण किया जाता है। मत्स्यपुराण, कालिकापुराण, बृहन्नन्दिकेश्वर और देवीपुराण इन चार पुराणों में निर्देशित सूत्रों के अनुसार दुर्गा-पूजा की पद्धतियाँ मिलती हैं। पूर्वी भारत में दुर्गाभक्ति तरङ्गिणी का मूलत: मिथिला, असम और पश्चिम बंगाल के कुछ क्षेत्रों में अनुसरण किया जाता है। दुर्गापूजा पद्धति कुछ स्मृतिशास्त्रों के निबन्धों में भी मिलती है, जैसे निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु में नौ दिन के दुर्गा पूजा का वर्णन मिलता है। इन दो ग्रन्थों मे वर्णित दुर्गा-पूजा तथा नवरात्र व्रत विधि का अनुसरण पूरे उत्तर और दक्षिण भारत में होता है। नवरात्रप्रदीप नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ भी नवरात्र व्रत विधि के विषय में एक प्रामाणिक स्रोत है। स्मार्त पण्डित रघुनन्दन भट्टाचार्य रचित दुर्गा उत्सवतत्त्व, जिस ग्रन्थ के अनुसार बंगाल में दुर्गा-पूजा अनुष्ठित होती है, उस ग्रन्थ में भी दुर्गापूजा के विभिन्न कल्प का उल्लेख मिलता है।

अत: पुराणोक्त और स्मृतिशास्त्रोक्त विधि-विधान ही बहुल रूप में पूर्वी भारत में प्रचलित है। केवल पुराण या स्मृति-निबन्धों में ही नहीं, तन्त्रशास्त्रों में भी इस शारदीय देवी आराधना के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है। वाराही तन्त्र, महाकाल संहिता इत्यादि तन्त्र ग्रन्थों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से दुर्गा-पूजा का विधि-विधान का आयोजन हमें देखने को मिलता है। दुर्गा-पूजा के विषय में केवल तन्त्र-ग्रन्थों में ही नहीं, तान्त्रिक निबन्धों में भी वर्णन मिलता है। अत: दुर्गा-पूजा के न केवल पौराणिक अथवा स्मार्त, अपितु तान्त्रिक पूजासूत्र भी हमें उपलब्ध होते हैं। रामतोषण विद्यालङ्कार भट्टाचार्य विरचित प्राणतोषिणी तन्त्र में भी विस्तृत दुर्गा-पूजा की पद्धति प्राप्त होती है। हम इस लेख में दुर्गा पूजा के विषय में अन्यतम तान्त्रिक स्रोत के विषय में चर्चा करेंगे।

वाराही तन्त्र का काल और विषयवस्तु

वाराही तन्त्र मुख्यत: तन्त्र-साधना के विविध विषय के

ऊपर चर्चा करता है। तन्त्रशास्त्र में जो विश्व की सृष्टि की दार्शनिक अवधारणाएँ हैं, वे वाराही तन्त्र में स्पष्ट रूप से वर्णित हैं। वाराही तन्त्र की पोथियाँ उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल में इस तन्त्र की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। वाराहीतन्त्र छत्तीस अध्यायों में विभाजित है और इसके अठाइसवें अध्याय में दुर्गापूजा का वर्णन किया गया है। वाराही तन्त्र में मुख्यत: तन्त्र शास्त्र के मुख्य विषय, जैसे पूजापद्धति, पूर्णाभिषेक, विभिन्न तान्त्रिक साधना का क्रम और आम्नायों के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है। इसी प्रकार कवच, हठयोग, यज्ञ, मुद्रा, बन्ध इत्यादि की चर्चा भी हुई है। वाराही तन्त्र के चौंतीसवें अध्याय में भूकम्प और स्वप्नदर्शन इत्यादि विषय भी चर्चित हुआ है। वाराही तन्त्र का सबसे चर्चित विषय है चण्डीहोम। दुर्गा सप्तशती के श्लोकों को सात सौ मन्त्र में कैसे विभाजित किया जाए, उसकी प्रक्रिया वाराही तन्त्र में उपलब्ध होती है।

वाराही तन्त्र के विषयवस्तु का विश्लेषण करके इसके संकलन-काल का अनुमान किया जा सकता है। वाराही तन्त्र द्वादश शतक के परवर्तीकाल में संकलित किया गया है। इसमें दुर्गा-पूजा का जो वर्णन है, वह भी किसी के मत में संकलनात्मक ही प्रतीत होता है। मुख्यत: कालिका पुराण आदि में वर्णित दुर्गा-पूजा के साथ इस तन्त्र में वर्णित दुर्गा-पूजा पद्धति का सादृश्य है। परन्तु कुछ अन्तर भी है। दुर्गा-पूजा की इस तान्त्रिक पद्धति में कालिका पुराण, गरुड़ पुराण आदि ग्रन्थों में जो पौराणिक पद्धति कही गयी है, उसका सुस्पष्ट निर्देश पद्धति-आकार में कहीं-कहीं दिया गया है। वाराही तन्त्र के अठाईसवें अध्याय में दुर्गा-पूजा विषयक जो चर्चा की गई है, उसके विषय में चर्चा करने से पूर्व हमें तान्त्रिक, पौराणिक और वैदिक पूजा-पद्धति के बारे में सुस्पष्ट रूप से ज्ञान होना आवश्यक है। इसलिए हम इस विषय में चर्चा करेंगे।

पूजापद्धति की विभिन्न प्रकृति – वैदिक कल्पशास्त्र अर्थात् जिन शास्त्र-ग्रन्थों में वैदिक यज्ञ इत्यादि का वर्णन है, वहाँ केवल वेद-मन्त्रों के द्वारा कर्मानुष्ठान करने का विधान दिया गया है। उन शास्त्रों के अनुसार वेद-मन्त्रों के द्वारा जिन पूजा-पद्धतियों का वर्णन किया गया है, वे सभी वैदिक पूजा पद्धतियाँ हैं। जिन पूजा-पद्धतियों का वर्णन तोडल तन्त्र, शारदातिलक तन्त्र इत्यादि तन्त्र-ग्रन्थों में किया गया है, इन ग्रन्थों में वर्णित पूजा-पद्धतियों में तान्त्रिक मन्त्र का उपयोग किया जाता है। तन्त्रशास्त्रों में वर्णित बीजाक्षरों का प्रयोग तथा न्यास आदि तान्त्रिक प्रक्रिया का अनुसरण करके जिन पूजा पद्धतियों का निर्देश किया जाता है, वे तान्त्रिक पद्धतियाँ हैं। पुराणों में वैदिक और तान्त्रिक; दोनों पद्धतियों का सम्मिश्रण होता है और पौराणिक श्लोकों का भी उपयोग होता है। दुर्गा-पूजा में इन तीनों पूजा-पद्धतियों की विशेषताएँ ही देखी जाती हैं। दुर्गा-पूजा के कलश-स्थापन में वैदिक यागादि की तरह वेद मन्त्रों का उपयोग होता है। गन्ध-पुष्प-नैवेद्य इत्यादि निवेदन काल में पौराणिक मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त तान्त्रिक बीजाक्षरों का भी प्रयोग किया जाता है। विस्तारित न्यास प्रक्रिया भी मैथिली दुर्गा-पूजा पद्धतियों में हमें देखने को मिलती हैं। अत: दुर्गा-पूजा में वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक धाराओं का त्रिवेणीसंगम हुआ है। वाराही तन्त्र में वर्णित दुर्गा-पूजा का जो सूत्र मिलता है, वह विश्लेषण करके दुर्गा पूजा की प्रकृति तान्त्रिकी है या नहीं, यह निश्चित कर सकते हैं। अभी वाराही तन्त्र में दुर्गा-पूजा के विषय में जो विधि निर्देशित की गयी है, उसके बारे में थोड़ी चर्चा करेंगे।

दुर्गा-पूजा की विधि – वाराही तन्त्र के अठाईसवें सर्ग में प्रथमत: मातृका पूजन का विधान दिया गया है। उसके पश्चात् देवी कौशिकी चण्डिका, चामुण्डा देवी की मूर्ति का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् दुर्गा-पूजा की प्रारम्भ-विधि का वर्णन किया गया है। मातृकाओं का और योगिनियों की पूजा का वर्णन भी वहाँ किया गया है। कुछ विकल्प दिए गए हैं। सर्वप्रथम बतलाया गया है, आश्विन कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि में देवी की पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए। कृष्ण नवमी में बोधन करने का विधान है। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में देवी का केशमोचन, पञ्चमी में स्नपन, सप्तमी में पत्रिकापूजा, अष्टमी में उपवास और जागरण, नवमी में विधिवत् बलिदान करने का विधान दिया गया है। अत: वाराही तन्त्र में पञ्चदश दिनात्मक दुर्गा-पूजा का वर्णन किया गया है। पूजा के लिए जयन्ती मंगला काली इत्यादि मन्त्र का उपयोग करने के लिए कहा गया है। इसके पश्चात् पूजा के विभिन्न उपचारों के महत्त्व और उनकी विशेषताओं का वर्णन किया गया है। दशमी में नीराजन या आरती का भी महत्त्व कहा गया है। यथा –

कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वा प्रभे दिवा ।।
नवम्यां बोधयेद् देवीं गीतवादित्रनिस्स्वनैः ।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु देवीकेशविमोचनं ।।
प्रातरेव तु पंचम्यां स्नापयेत् सुशुभैर्जलैः ।
सप्तम्यां पत्रिकापूजा अष्टम्यां चाप्युपोषणं ।।
पूजा च जागरश्चैव नवम्यां विधिवद् बलिः ।
सप्रेषणं दशम्यां तु क्रीडाकौतुकमङ्गलैः ।।
नीराजनं दशम्यां तु बलिवृद्धिकरं महत् ।

इसके अतिरिक्त अन्य एक श्लोक में कहा गया है कि देवी महाकाली ब्रह्मा के द्वारा आश्विन प्रतिपदा में उद्‌बोधित हुई थीं। अत: आश्विन प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त देवी की पूजा करनी चाहिए। नवमी में बलिदान, गीत, वाद्य ध्वनि के साथ पूजा करनी चाहिए। अत: नवमी में रावण-वध के उपरान्त ब्रह्मा ने देवी की विशेष पूजा की थी। अत: उस दिन विशेष पूजा करनी चाहिए। दिक्पाल, योगिनी प्रमुखों का भी विशेष पूजन करना चाहिए। यहाँ नवदिनात्मक पूजा में एक-एक दिन विशेष द्रव्यों से देवी की पूजा का वर्णन किया गया है। प्रतिपदा में केश संस्कार का द्रव्य, द्वितीया के दिन केशालंकार का कारण, तृतीया में दर्पण, सिन्दूर और अलक्तक, चतुर्थी में मधुपर्क तिलक, पंचमी में नेत्रांजन, यथाशक्ति अलंकार देने की विधि है। इसके उपरान्त बिल्व वृक्ष में देवी का बोधन, सप्तमी में पत्रिका पूजा, अष्टमी में सम्पूर्ण उपवास और नवमी में कुमारी पूजा, बलिदान, अष्टशक्ति का पूजन करने का निर्देश मिलता हैं। दशमी के दिन शाबरोत्सव का विधान भी मिलता है। कहा गया है कि इस श्रेष्ठ विधि का अनुसरण कर जो देवी की पूजा करता है, देवी कार्तिकेय की तरह उनका पालन करती हैं। इस पूजा-विधि का पूर्वी भारत के अधिकतर क्षेत्रों में अनुसरण किया जाता है। इस नवदिनात्मक पूजा के उपरान्त पंचदिनात्मक पूजा का विकल्प भी दिया गया है। यथा –

बोधयोद्बिल्वशाखायां षष्ठ्यान्देवी फलेषु च ।
सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ।।
पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत् ।
जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिशि ।।
प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिनार्चयेत् ।
ध्यायेद् दशभुजां देवीं दुर्गातन्त्रेण पूजयेत् ।।
विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद् वै शाबरोत्सवैः ।
कृत्वा विसर्जनं तस्यां तस्या नक्तं समाचरेत् ।।

षष्ठी तिथि में बिल्व शाखा में देवी का बोधन करना चाहिए। सप्तमी तिथि में बिल्वशाखा का आहरण कर पूजा करनी होगी। पुन: अष्टमी तिथि में विशेष पूजा और रात्रि जागरण करना चाहिए। उस दिन रात्रि में विशेष पूजा और महानिशा में बलिदान करना चाहिए। नवमी में प्रचुरसंख्यक बलिदान के साथ विधिवद् दशभुजा दुर्गा देवी का तान्त्रिक दुर्गा-पूजा विधि के अनुसार पूजन करना चाहिए। दशमी में विसर्जन और शाबरोत्सव करने का विधान दिया गया है। इस प्रकार पंचदिवसीय पूजा का विधान भी दिया गया है। इसके उपरान्त त्रिदिवसीय पूजा का वर्णन किया गया है। इसमें तिथि के साथ नक्षत्र का भी महत्त्व है। कहा गया है कि मूल नक्षत्र में देवी का आवाहन और श्रवण नक्षत्र में विसर्जन करना चाहिए। इसे नक्षत्रत्रयपूजा कह सकते हैं। तीन नक्षत्रों में पूजा सम्पन्न होगी। उसमें सप्तमीयुक्त मूल नक्षत्र में आवाहन और दशमी श्रवण नक्षत्र में विसर्जन करने का विधान है। अत: सप्तमी, अष्टमी और नवमी तीन दिन की यह पूजा है।

ऋक्षत्रये च मूलादौ सप्तम्यामाश्विने सिते ।
चण्डिकामुपहारैश्च पूजयेद्राष्ट्रवृद्धये ।।

यह पूजा राष्ट्र की प्रगति का कारण है, ऐसा कहा गया है। राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिए यह पूजा विहित है। अष्टमी के दिन रात्रि में बलिदानादि सहित देवी चण्डिका की पूजा भी विहित है। उस समय देवी के साथ उग्रचण्डा इत्यादि देवियों की और चौंसठ योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ।

अन्त में एकदिवसीय पूजा के वर्णन में कहा गया है –

कन्यासंस्थे रवौ चैव शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत् ।।
सोपवासो निशार्द्धे तु महाविभवविस्तरैः ।
पूजां समारभेद्देव्या नक्षत्रे वारुणेऽपि वा ।।
पशुघातश्च कर्तव्यो गवलाजवधस्तथा ।
बलिक्षेपं सुरेशानां कृत्वा सर्वं निशान्तये ।।

आश्विन शुक्ल पक्ष की अष्टमी में अत्यन्त आडम्बर सहित देवी दुर्गा की पूजा करनी चाहिए। विविध पशुघातादि सहित देवी की महापूजा करणीय है।

इस प्रकार अष्टमी और नवमी; दो दिनों की पूजा का वर्णन भी किया गया है। इन विधियों में एक विषय समान है कि मुख्यत: राष्ट्रहित और राष्ट्राभिवृद्धि हेतु दुर्गा-पूजा विहित है। अत: प्रतीत होता है कि राजवंशों में ही दुर्गा-पूजा

का प्रचलन सबसे आधिक था। परन्तु वाराही तन्त्र में केवल कलश-स्थापन करके भी पूजा करने का विधान है, जो इस अध्याय के अन्त में है। वाराही तन्त्र में कलश स्थापन कर के उस कलश में गणपति, वरुण, अग्नि ब्रह्मा, नाग, स्कन्द, सूर्य, मातृगण, दश दिक्पाल और नौ ग्रह, इन सब देवताओं का आवाहन कर पूजन के उपरान्त देवी चण्डिका और उग्रचण्डा आदि शक्ति के पूजन का विधान दिया गया है, जो केवल अष्टमी में किया जाना चाहिए। अन्त में सन्धिपूजा के विषय में भी कहा गया है, जिसे इस तन्त्र के अनुसार अष्टमी और नवमी द्विदिवसीय पूजा में करना चाहिए। अष्टमी और नवमी की सन्धिक्षण की पूजा को उमा-माहेश्वरी तिथि की पूजा कहते हैं। अर्धरात्रि की पूजा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

उपसंहार – वाराही तन्त्र दुर्गा-पूजा की ऐसी एक तान्त्रिक विधि है, जहाँ सभी प्रकार के मतों का संकलन है। इसके अतिरिक्त वाराही तन्त्र की अधिकांश पूजा-विधि में मूर्ति-पूजा का उल्लेख कम मिलता है। उसके स्थान पर स्थित है नवपत्रिका और कलश पूजा। शारदीय नवरात्रि का यही सबसे प्राचीन रूप है। आज भी पूर्व भारत में यद्यपि अधिकांशत: प्रतिमा-पूजा की जाती है, परन्तु कुछ प्राचीन पूजा-परम्परा में कलश और नवरात्रि पूजा ही होती है। वाराही तन्त्र में जो पूजा-पद्धति है, वह अति संक्षिप्त-पद्धति है। पौराणिक विधि में इससे भी अधिक विस्तृत पद्धति है। परन्तु इस पद्धति में सन्धिपूजा, कुमारी पूजा और निशापूजा को दुर्गा-पूजा का अभिन्न अंग कहा गया है। पौराणिक पूजा में कुमारी पूजा, सन्धि पूजा और निशा पूजा वैकल्पिक हैं। इनका उतना महत्त्व नहीं है। पौराणिक पूजा में महास्नान या महाभिषेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। परन्तु वाराही तन्त्रोक्त पद्धतियों में विभिन्न योगिनी, बटुक, क्षेत्रपालादि सहित देवी की पूजा मुख्य है। अन्य पद्धतियों में विभिन्न पीठ, मातृका इत्यादि अनेक प्रकार के देवी-देवताओं का वर्णन है। वाराही तन्त्र में अत्यन्त संक्षिप्त रूप से दुर्गा-पूजा की आवरण पूजा का वर्णन है। अत: वाराही तन्त्र यद्यपि अनेक प्रकार से दुर्गा-पूजा की विधि निर्देशित करता है, परन्तु उसमें पूजा विस्तृत और जटिल नहीं है। साधारण गृहस्थ भी यह पूजा कर सकते हैं। परन्तु पौराणिक पूजा राजाओं के द्वारा ही की जा सकती है। अत: दुर्गा-पूजा का सरलीकृत रूप वाराही तन्त्र ने हमें दिया है। यही वाराही तन्त्रोक्त दुर्गापूजा-पद्धति का महत्त्व है। ○○○

पृष्ठ ४६६ का शेष भाग

प्रतिबिम्बित करता है। एक चेतना सम्पन्न स्त्री ही अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सम्बन्धों के प्रति जागरूक हो सकती है, अपने अधिकारों की समझ रख सकती है। स्त्री जीवन के लिए दंश बनी कुप्रथाओं के खिलाफ खड़ी होने का संबल जुटा सकती है। इसीलिए नवरात्रि का एक संदेश यह भी है कि माँ एक स्त्री के रूप में सौम्य और कोमलांगी हैं, तो बुराइयों का प्रतिकार करने के लिए प्रचण्ड रूप भी धारण करती हैं। ऐसे में यह पर्व आधुनिक सन्दर्भ में स्त्रियों को प्रगतिशील सोच रखने और सशक्त व्यक्तित्व के रूप में पहचान बनाने की सीख भी देता है। आम जीवन में स्नेह और ममता भरा मन रखने के साथ ही अत्याचार के विरोध में आवाज बुलन्द करने का पाठ पढ़ाता है।

पूजन और परम्परा का मेल : नृत्य, रंग, रोमांच, परम्परा और पूजन का यह प्यारा पर्व हमें जड़ों से जोड़कर रखते हुए नई सोच, नए व्यक्तित्व से मिलवाता है। यह निखार-सँवार बाहरी और भीतरी दोनों मोर्चों पर होता है। गरबा-डांडिया की थिरकन, सामाजिक मेलजोल और मन-जीवन में उमंग लाती है, तो माँ की आराधना का भाव स्वयं अपने अस्तित्व के सही मायने में समझने का पाठ पढ़ाता है।

एक ओर नवरात्र में हर दिन एक नए रंग को पहनते-ओढ़ते हुए जीवन में खुशियों के इन्द्रधनुष से नाता जोड़ता है, तो दूसरी ओर आध्यात्मिक रूप से हमारा मन शक्ति-स्वरूपा माँ के जाग्रत रूप की ओर मुड़ता है। गहराई से समझें, तो देवी भगवती की उपासना के ये नौ दिन, जीवन की हर जड़ता को दूर करने का उत्साह साथ में लाते हैं। पम्परागत रंगों को सहेजते हुए मन-जीवन के मोर्चे पर हर तरह से सकारात्मक प्रगति का मार्ग सुझाते हैं। ○○○

(हरिभूमि, २७ सितम्बर, २०२२ से साभार)

स्वामी अखिलानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

एक दिन दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण देव ने समाधि से नीचे उतरकर श्रीमाँ सारदा देवी से कहा, ''देखो, मैं एक ऐसे देश में गया था, जहाँ के मनुष्यों का रंग सफेद था। उनमें क्या ही भक्ति है!'' इस घटना के सम्बन्ध में स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज ने शान्ति आश्रम में कहा था, ''ठाकुर ने हम लोगों से कहा था कि उनके अनेक भक्त हैं, जो विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं। विश्व के विभिन्न देशों में रहते हैं और जिनका चाल-चलन भी भिन्न है। वे लोग भी उनकी पूजा करेंगे तथा वे लोग भी जगदम्बा की सन्तान हैं।''

वेदान्त सोसाएटी ऑफ प्रोविडेन्स, अमेरिका

परवर्ती काल में, रामकृष्ण के पाँच संन्यासी शिष्य – स्वामी विवेकानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी अभेदानन्द, स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी त्रिगुणातीतानन्द ने श्रीरामकृष्ण की वाणी को पश्चिम देशों में प्रचारित-प्रसारित किया। उनका अनुसरण करते हुए श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी ब्रह्मानन्द के शिष्यों ने रामकृष्ण तथा वेदान्त की वाणी का प्रचार विदेशों में किया। उनमें से **स्वामी अखिलानन्द जी महाराज (१८९४-१९६२)** अनन्यतम थे। उनका पूर्वाश्रम का नाम निरोधचन्द्र सान्याल था। उनका

जन्म १८९४ ई. में मैंमनसिंह जिला (बंगलादेश) के नौवापारा गाँव में हुआ था। उन्होंने सन्त पॉल कैथड्रल कॉलेज, कोलकाता से स्नातकोत्तर की पढ़ाई की। १९१९ ई. में वे भुवनेश्वर मठ में सम्मिलित हुए। स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से उनकी मन्त्रदीक्षा हुई। आगामी वर्ष ब्रह्मानन्दजी ने उनको ब्रह्मचर्य में दीक्षित किया तथा उसके अगले वर्ष १९२१ ई. में मद्रास में उनको संन्यास दीक्षा दी। १९२५ ई. तक वे मद्रास मठ में सेवारत थे। १९२६ ई. में अखिलानन्द स्वामी परमानन्द जी के सहायक के रूप में अमेरिका गए। एक वर्ष पश्चात् परमानन्द महाराज ने उनको एक अलग केन्द्र स्थापित करने के लिए कहा। स्वामी अखिलानन्द जी उस समय बहुत बीमार थे। उनको युवावस्था में ही टीबी हो गया था। बहुत चिकित्सा करने के पश्चात् वे स्वस्थ हुए। किन्तु बाद में पुन: उन्हें टीबी ने जकड़ लिया। उस समय मिस्टर और मिसेज लियोनार्ड वोरसेस्टर उनको अपने कैम्ब्रिज वाले घर में ले गए। अनेक चिकित्सा तथा सेवा से वे स्वस्थ हुए। १९२८

ई. में अखिलानन्दजी ने प्रोविडेन्स, ग्रीक द्वीप में वेदान्त केन्द्र आरम्भ किया तथा १९४१ ई. में बोस्टन में केन्द्र स्थापित किया, जहाँ उन्होंने १९६२ ई. में अपने पंचभौतिक शरीर का त्याग कर दिया।

श्रीसारदा मठ, दक्षिणेश्वर

१८९७ ई. में स्वामी विवेकानन्द के निर्देशानुसार विज्ञानानन्द महाराज ने बेलूड़ मठ में श्रीरामकृष्ण देव के मन्दिर का मानचित्र तैयार किया। १९२९ ई. में स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने मन्दिर के लिए भूमिपूजन किया। किन्तु अर्थाभाव के कारण श्रीरामकृष्ण देव के मन्दिर का निर्माण-कार्य नहीं हुआ। कुछ वर्ष के पश्चात् स्वामी अखिलानन्द की शिष्या हेलेन रूबेल ने बेलूड़ मठ में ठाकुर के मन्दिर निर्माण के लिए रुपए दिये। अखिलानन्दजी ने हेलेन रूबेल का नाम रखा 'भक्ति' एवं मिसेज वोरसेस्टर को 'अन्नपूर्णा' नाम दिया। ये दोनों महिलाएँ भारत आयीं तथा स्वामी अखण्डानन्द तथा स्वामी विज्ञानानन्द से आशीर्वाद प्राप्त कीं। १४ जनवरी, १९३८ ई. में स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण देव के मन्दिर का उद्घाटन किया।

भक्ति एवं अन्नपूर्णा

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, ''बोस्टन अमेरिका का मस्तिष्क है।'' स्वामी अखिलानन्द जी बोस्टन तथा प्रोविडेन्स के बुद्धिजीवी लोगों में अति प्रसिद्ध थे। वे बोस्टन के साथ-साथ हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, MIT (Massachusetts Institute of Technology) तथा ब्रॉउन यूनिवर्सिटी में भी दर्शन तथा मनोविज्ञान पर व्याख्यान देते थे। उन विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों के साथ विज्ञान तथा दर्शनशास्त्र पर विचार-विमर्श करते थे। अखिलानन्दजी ने कई चिन्तनपूर्ण एवं मूल्यवान ग्रन्थ की रचना की है, जैसे Mental Health and Hindu Psychology, The Hindu View of Christ, Hindu Psychology : Its Meaning for the West, Modern Problems and Religion and Spiritual Practices.

ब्रह्मज्ञानी की सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। स्वामी विवेकानन्द एक ब्रह्मज्ञ पुरुष थे। उनकी कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रह सकती। स्वामीजी की इच्छा थी कि पुरुषों के लिए जैसे मठ की स्थापना हुई है, उसी तरह महिलाओं के लिए भी एक संन्यासिनी संघ हो। उनकी वह इच्छा श्रीमाँ सारदा देवी की शताब्दी जयन्ती १९५३-५४ में श्रीसारदा मठ, दक्षिणेश्वर में स्थापना से पूर्ण हुई। उस समय, बेलूड़ मठ के वरिष्ठ संन्यासियों ने अमेरिका के सेवारत संन्यासियों से सारदा मठ के लिए दान हेतु निवेदन किया। अखिलानन्द जी महाराज के शिष्य एस्थर हैरिंगटन ने प्रोविडेन्स से $40,000 (चालीस हजार डॉलर) दान दिया।

मैंने कभी भी स्वामी अखिलानन्द जी महाराज को नहीं देखा। उनकी मृत्यु १९६२ ई. में बोस्टन में हुई। हालाँकि मैंने स्वामी सर्वगतानन्द तथा अन्य संन्यासियों से उनके पवित्र जीवन, प्रेमपूर्ण अमायिक स्वभाव, दानशीलता, विद्वत्ता तथा निरभिमानिता की बात सुनी है। १९८० में स्वामी सर्वगतानन्दजी ने मुझे एक बॉक्स पत्र दिया। उसमें अधिकांशत: बंगला में लिखा हुआ था। वे पत्र स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी सारदानन्द, स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी विज्ञानानन्द, स्वामी शुद्धानन्द, स्वामी शंकरानन्द तथा बेलूड़ मठ के सुप्रसिद्ध संन्यासियों ने अखिलानन्दजी को लिखा था। मैंने उन पत्रों को बारम्बार पढ़ा तथा उनका जेरॉक्स करके रखा है। १९९५ ई. में मैंने

समस्त पत्र बेलूड़ मठ वापस भेज दिया है। उस समय स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज महासचिव थे।

मैंने अखिलानन्दजी का टेप किया हुआ स्वामी ब्रह्मानन्द की स्मृति के विषय में कई व्याख्यान सुना है। इन सभी संन्यासियों का जीवन, उनकी स्मृतियाँ एवं श्रीरामकृष्ण के शिष्यों के पत्रों में रामकृष्ण संघ का इतिहास छिपा हुआ है। हम लोग अखिलानन्दजी की शिष्या एल्वा लिनिया नेल्सन के विशेष आभारी हैं, जिन्होंने २००७ में स्वामी अखिलानन्द के विषय में ३०७ पृष्ठों की एक तत्त्वपूर्ण

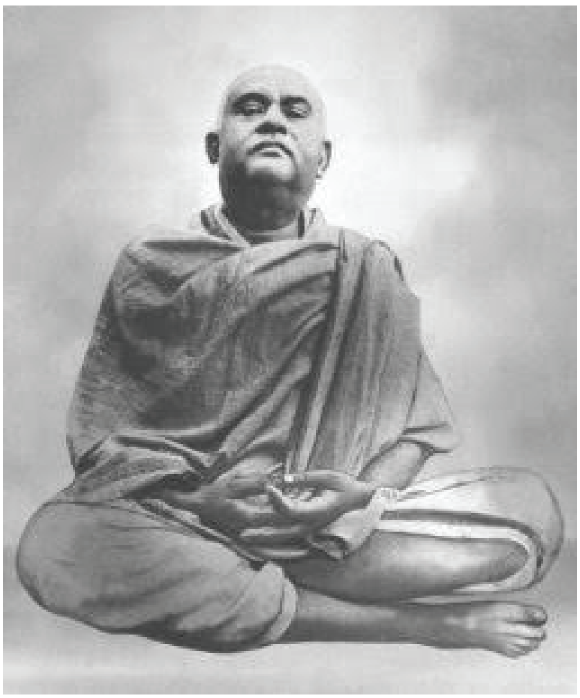

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

जीवनी A Monk for All Seasons नाम से लिखा। नेल्सन व्यावसायिक पुस्तकालयाध्यक्षा थीं। एल्वा ने २५ वर्ष की उम्र में स्वामी अखिलानन्द जी महाराज से दीक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का बहुत गहन अध्ययन किया है तथा अनेक लेख भी लिखा है। एल्वा के साथ मेरा बहुत अच्छा परिचय था। २००९ में उन्होंने श्रीरामकृष्ण के उपदेशों का संग्रह किया तथा एक छोटी पुस्तक Remembering Ramakrishna : His Words के नाम से लिखा। उन्होंने मुझसे उस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने के लिए कहा। मेरी प्रस्तावना के साथ वह पुस्तक वेदान्त प्रेस, हॉलीवूड से प्रकाशित हुई। एल्वा ने २०१३ ई. में नश्वर शरीर त्याग दिया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज अखिलानन्दजी को बहुत प्रेम करते थे तथा अखिलानन्दजी की अपने गुरु के प्रति अपार गुरुभक्ति थी। इन पुराने संन्यासियों की जीवनी तथा स्मृति जितना ही पढ़ता एवं सुनता हूँ, उतना ही समझ में यह आता है कि श्रीरामकृष्ण देव किसके द्वारा क्या कराएँगे, ये केवल वही जानते हैं। श्रीरामकृष्ण की कृपा तथा अपने गुरु के आशीर्वाद से अखिलानन्दजी महाराज ने पश्चिम में रामकृष्ण संघ के लिए पथप्रदर्शक का कार्य किया है। उनके द्वारा प्रेरित होकर उनकी दो शिष्याओं ने बेलूड़ मठ में श्रीरामकृष्ण देव का मन्दिर तथा सारदा मठ की स्थापना में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण किया था। स्वामी अखिलानन्द जी महाराज वास्तव में एक सम्माननीय संन्यासी थे।

स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्वामी अखिलानन्द की स्मृति

बेलूड़ मठ, २६ अक्तूबर, १९३४

"बेलूड़ मठ के आगन्तुक कक्ष में संन्यासीगण स्वामी अखिलानन्द जी का अमेरिका में उनके अनुभव सुनने हेतु समवेत हुए हैं। पूजनीय विरजानन्द जी महाराज तथा अन्यान्य संन्यासीगण उपस्थित थे। अखिलानन्दजी ने कहा, 'जो अमेरिका में प्रचार-कार्य के लिए जायेंगे, उनमें निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है : (१) अति धैर्यवान, (२) अत्यधिक ध्यानशीलता – अन्तर्मुखी स्वभाव तथा जप-ध्यान का स्वाभाविक अनुराग (३) सौहार्द।

'कइयों को लगता है कि नियम का होना आवश्यक है, किन्तु मुझे लगता है कि संन्यासियों के लिए जितना कम नियम हो, उतना ही अच्छा है। नियम का अर्थ ही होता है दोहरा व्यवहार।

'हमारे संघ में नियम-कानून से अधिक प्रेम की अधिक आवश्यकता है। यदि हम रोमन कैथोलिक संघ का अनुकरण करने का प्रयास करेंगे, तो वह हमारे संघ के लिए बहुत क्षतिकारक होगा।

'स्वामी विवेकानन्द हम लोगों को सेवा करने के लिए कह गए हैं, इसलिए हम लोगों को सेवा करनी ही होगी। लेकिन उसके साथ-ही-साथ हम सभी को श्रीरामकृष्ण देव के प्रतिनिधि के रूप में अपने आपको विकसित करना ही होगा।' " **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के द्वारा व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन किया गया

३० जून, २०२६ को १०.१५ से ११.३० बजे तक रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के द्वारा व्यक्तित्व विकास प्रकल्प के अन्तर्गत महासमुँद जिले के बसना ग्राम के स्वामी आत्मानन्द शासकीय अँग्रेजी विद्यालय में व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता विद्यालय की प्राचार्या सुश्री गिरिजा साहू ने की। एसोसिएट प्रोफेसर श्री दिनेश देवांगन, शिक्षक श्री के. पुरोहित और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने बच्चों को सम्बोधित किया और उनके प्रश्नों के उत्तर दिए।

उसी जिले में वहाँ से २० किलोमीटर दूर ग्राम भूकेल में स्वामी आत्मानन्द शासकीय अँग्रेजी-हिन्दी-विद्यालय में उसी दिन अपराह्न १२.१५ से १.३० बजे तक व्यक्तित्व विकास शिविर आयोजित किया गया, जिसमें वहाँ के प्रचार्य श्री सी.एस. पटेल जी ने अध्यक्षता की। शिक्षक श्री सहदेव बरवै, श्री दिनेश देवांगन और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने बच्चों को उनके व्यक्तित्व से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा की।

विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में गुरु-पूर्णिमा मनाई गई

२९ जुलाई, २०२६ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में गुरुपूर्णिमा उत्सव का आयोजन किया गया। उसमें प्रात:काल से श्रीरामकृष्ण देव की विशेष पूजा, हवन और भोगारती हुई। सभी भक्तों ने पुष्पांजलि दी। आश्रम के सचिव स्वामी योगस्थानन्द जी ने जीवन में श्रीगुरुदेव के महत्त्व पर प्रकाश डाला। लगभग १००० भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया।

रामकृष्ण-विवेकानन्द स्वाध्याय सेवा ट्रस्ट, धनबाद का वार्षिकोत्सव मनाया गया

रामकृष्ण-विवेकानन्द स्वाध्याय सेवा ट्रस्ट, धनबाद, झारखण्ड के द्वारा अपने आश्रम का प्रथम वार्षिकोत्सव बड़े भव्य रूप से मनाया गया। इस समारोह का प्रारम्भ ४ जुलाई, २०२६ को युवा शिविर और सांस्कृतिक सन्ध्या के द्वारा किया गया। प्रात: १०.३० बजे से १.३० बजे तक युवा शिविर का आयोजन किया गया। ट्रस्ट के सचिव श्री बिकेश कुमार सिंह ने समागत सभी अतिथियों का स्वागत किया। रामकृष्ण मिशन, मोराबादी, राँची के सचिव स्वामी भवेशानन्द, 'विवेक ज्योति' हिन्दी पत्रिका के सम्पादक स्वामी प्रपत्त्यानन्द, आईआईटी-आईएसएम, धनबाद खनन विभाग के प्रो. सुनील कुमार, ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. अमलेन्दु सिन्हा ने युवाओं को सम्बोधित किया। स्वामी सुखमयानन्द जी का पावन सान्निध्य मिला। इसमें ४ विद्यालयों के छात्र-छात्राओं और अन्यों सहित लगभग १५० युवाओं ने भाग लिया। सन्ध्या ७.३० बजे से ९ बजे तक शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रम था, जिसमें बच्चों ने बहुत सुन्दर नृत्य किए और भजन प्रस्तुत किए।

५ जुलाई को प्रात: ७ बजे से प्रभात फेरी निकाली गयी। मन्दिर में विशेष पूजा, हवन, पुष्पांजलि, भोग, आरती आदि सम्पन्न हुए। लगभग ५०० भक्तों को भोजन-प्रसाद प्रदान किया गया। शाम को ७.३० बजे ८.३० बजे तक धर्मसभा का आयोजन हुआ, जिसमें स्वामी भवेशानन्द जी महाराज और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने 'रामकृष्ण भावधारा और हमारा जीवन-उद्देश्य' पर व्याख्यान दिया। मंचस्थ थे अमलेन्दु सिन्हा, बीसीसीएल के सचिव बानी कुमार पारुई। अन्त में भजन से सभा सम्पन्न हुई। सभा का संचालन दिलीप सिंह ने किया।